"आर्य्य-साहित्य-विभाग" ग्रन्थमाला

सम्पादक—वाचस्पति ऐम० ए०

ग्रन्थाङ्क २

प्रकाशक—

अध्यक्ष—आर्य्य-साहित्य-विभाग
आर्य्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा लाहौर।

मुद्रक—

मलिक हरभगवानदास महरोत्रा
नवजीवन प्रेस, मैक्लेगन रोड, लाहौर।

ओ३म्

# सम्पादकीय वक्तव्य

"ऋग्वेद शतक" को आर्य जनता की सेवा में भेंट करते समय आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के मन्त्री जी ने घोषणा की थी, कि आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के प्रथम उद्देश्य की पूर्ति क लिये "आर्य साहित्य विभाग" की स्थापना नियम पूर्वक की गई है। इस विभाग की ओर से स्वाध्याय के लिये उत्तम साहित्य और वैदिक सिद्धान्तों की पुष्टि में साहित्य प्रकाशित किया जायगा। वैदिक सिद्धान्तों पर विधर्मियों द्वारा किये गए आक्षेपों के उत्तर भी इस विभाग की ओर से दिये जायंगे। साथ ही यह भी घोषणा की गई थी

कि 'ऋग्वेद शतक' के ढङ्ग पर अन्य वेदों के शतक भी प्रकाशित किये जायँगे ।

विपक्षियों के आक्षेपों के उत्तर समाचार पत्रों में दिए जा रहे हैं । एक ट्रैक्ट भी प्रकाशित किया गया है । स्वाध्याय के लिये यह सुन्दर गुटका सहृदय पाठकों की सेवा में भेंट किया जाता है । इस गुटके में यजुर्वेद के १०० ईश्वर भक्ति परक मन्त्रों का संग्रह किया गया है । इसके संग्रहकर्त्ता भी वेदों के परम भक्त, पूज्य श्री १०८ स्वामी अच्युतानन्दजी सरस्वती हैं । आपने मन्त्रों का शब्दार्थ और भावार्थ भी लिखा है । इस वृद्ध अवस्था में भी आप इतना परिश्रम कर रहे हैं, इसका कारण आपका हार्दिक वेद-प्रेम ही है ।

प्रभु भक्तों और वेद प्रेमियों के लिये यह सुन्दर वैदिक गुटका अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा । इन मन्त्रों को पढ़ने से एक भक्त प्रभु प्रेम

में मस्त हो जाता है। अच्छा यही होगा कि आर्य भाई इन मन्त्रों को कण्ठाग्र कर लें।

आर्य भाईयों की सेवा में एक निवेदन करना मैं अत्यन्त आवश्यक समझता हूँ, कि वह साहित्य के इस पवित्र काम में सभा का हाथ बटाएँ, तभी यह काम स्थिर रूप से चल सकता है।आप को बहुत अधिक खर्च करने की भी आवश्यकता नहीं है। आप केवल ॥) खर्च कर एक बार स्थाई ग्राहक बन जाएँ और औरों को स्थाई ग्राहक बनाएँ। स्थाईग्राहक जो पुस्तक चाहें पौने मूल्य पर ले सकते हैं। आशा है कि आर्य भाई इतना काम तो अपने धर्म के लिये अवश्य करेंगे ही।

निवेदक—

वाचस्पति

अध्यक्ष—आर्य्य-साहित्य-विभाग।

## मन्त्रों की अकारादि क्रम से सूची

[ अ ]

[ ऋ ]

[ ओ ]

[ औ ]



...

...

...

...

# यजुर्वेद-शतकम्

इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवः स्थ, देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण, आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माऽघशंसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात् बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि ॥१॥ यजु० १।१॥*

पदार्थः—हे परमेश्वर ! ( इषे ) अन्नादि इष्ट पदार्थों के लिये ( त्वा ) आपको ( ऊर्जे )

---

*इन दोनों अंकों से तात्पर्य क्रमानुसार यजुर्वेद के अध्याय और मन्त्र हैं। (सम्पादक)

स्था ) बलादिकों की प्राप्ति के लिये आश्रयण करते हैं। हे जीवो ! तुम ( वायवः ) तुम वायु रूप ( स्थ ) हो। ( सविता देवः ) जगत् उत्पादक देव ( श्रेष्ठतमाय कर्मणे ) उत्तम कर्म के लिये ( वः ) तुम सब को ( प्रार्पयतु ) संबद्ध करे, उस उत्तम कर्म द्वारा ( इन्द्राय भागम् ) उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त ऐसे उत्तम पुरुष के भाग को ( आप्यायध्वम् ) बढ़ाओ, यज्ञादि कर्मों के संपादन के लिये ( अघ्न्या ) न मारने योग्य ( प्रजावतीः ) बच्छड़ों वाली ( अनमीवाः ) साधारण रोगों से रहित ( अयक्ष्माः ) तपेदिक आदि बड़े रोगों से रहित गौएं सम्पादन करो। ( वः ) आप लोगों के बीच जो ( स्तेनः ) चोर हो, वह उन गौओं का ( मा ईशत ) स्वामी न बने, और ( अघ- शंसः ) पाप चिन्तक भी ( मा ) उनका स्वामी न बने। ऐसा प्रयत्न करो जिससे ( बह्वीः ध्रुवा )

बहुत सी चिरकाल पर्यन्त रहने वाली गौएँ ( अस्मिन् गोपतौ ) इस दोष रहित गो रक्षक के पास ( स्यात ) बनी रहें। प्रभु से प्रार्थना है कि ( यजमानस्य ) यज्ञादि उत्तम कर्म करने वाले के ( पशून् पाहि ) पशुओं की हे ईश्वर! रक्षा कर।

भावार्थः—हे परमेश्वर! अन्न और बलादिकों की प्राप्ति के लिये आपकी उपासना प्रार्थना करते हुए आपका ही हम आश्रय लेते हैं। परम दयालु प्रभु, जीव को कहते हैं कि, हे जीव! तुम वायुरूप हो। प्राणरूपी वायु से ही तुम्हारा जीवन बन रहा है। तुमको मैं जगत्कर्ता देव, शुभ कर्मों के करने के लिये प्रेरणा करूं, यज्ञादि उत्तम कर्म कर्ताओं के लिये श्रेष्ठ गौओं का संग्रह करना आवश्यक है। प्रभु से प्रार्थना है कि, हे ईश्वर! यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म करने वाले यजमान के गौ आदि पशुओं की रक्षा करें॥१॥

नम॑स्ते हर॑से शोचिषे नम॑स्ते अस्त्वर्चिषे ।
अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः, पावको
अस्मभ्यꣳशिवो भव ॥२॥ ३६।२०॥

पदार्थः—( हरसे ) पापों को हरने वाले ( शोचिषे ) पवित्र करने वाले और ( अर्चिषे ) अर्चा, पूजा सत्कार करने योग्य आप परमात्मा को ( नमः ते नमः ते ) वारंवार हमारा नमस्कार ( अस्तु ) हो । ( ते हेतयः ) आपके वज्र ( अस्मत् अन्यान् ) हमारे से भिन्न, हमारे शत्रुओं [ दूसरों ] को ( तपन्तु ) तपाते रहें । ( पावकः ) पावन करने वाले आप जगदीश्वर ( अस्मभ्यम् ) हम सब के लिये ( शिवः भव ) कल्याणकारी होवो ।

भावार्थः—हे दयामय परमात्मन् ! आप अपने भक्तों के पापों और कष्टों को दूर करने वाले, अर्थात् पापों से बचाते हुए उनके अन्तः-

करण को पवित्र और तेजस्वी बनाने वाले हैं, आप भक्तवत्सल भगवान् को हमारा प्रणाम हो। हे दयामय जगदीश ! ऐसा समय कभी न आवे कि, हम आपकी आज्ञा के विरुद्ध चल कर आपके दण्ड के भागी बनें। किन्तु हम सदा आपकी आज्ञा के अनुकूल चल कर, आपकी कृपा के पात्र बनते हुए, सुख और कल्याण के भागी बनें ॥२॥

**नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे।**
**नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे ॥३॥**

३६।२१॥

पदार्थः—( विद्युते ) विशेष प्रकाश तेजःस्वरूप ( ते ) आपके लिये ( नमः अस्तु ) नमस्कार हो। ( स्तनयित्नवे ) शब्द करने वाले (ते नमः) आपको नमस्कार हो। हे (भगवन्) ऐश्वर्य सम्पन्न जगन्नियन्तः ! ( ते नमः अस्तु ) आप को प्रणाम हो, ( यतः ) जिससे ( स्वः )

सब को आनंद करने के लिये ( समीहसे ) आप सम्यक् चेष्टा करते हैं।

भावार्थः—हे सकल ऐश्वर्ययुक्त समर्थ प्रभो! आप विशेष प्रकाशस्वरूप और किसी से भी न दबने वाले महातेजस्वी हो, आप को हमारा नमस्कार हो। आप शब्द करने वाले अर्थात् वेद वाणी के दाता हो, आप सदा आनन्द में रहते और अपने प्रेमी भक्तों को सदा आनन्द में रखते हो। आप की जो जो चेष्टाएँ हैं वे सब को आनन्द देने के लिये ही हैं, अत एव हम आप को बारंबार नमस्कार करते हैं ॥३॥

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु।
शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः॥४॥
३६।२२॥

पदार्थः—( यतः यतः ) जिस जिस स्थान से वा कारण से ( सम् ईहसे ) आप

सम्यक् चेष्टा करते हो ( ततः ) उस उस से ( अभयम् ) अभय दान ( कुरु ) करो । ( नः प्रजाभ्यः ) हमारी प्रजाओं के लिये ( शम् कुरु ) शान्ति स्थापन करो । ( नः पशुभ्यः ) हमारे पशुओं के लिये ( अभयम् कुरु ) अभय प्रदान करो ।

भावार्थः—हे दयामय परमात्मन् ! जिस २ स्थान से वा कारण से आप कुछ चेष्टा करो, उस उस से हमें निर्भय करो । हमारी सब प्रजाओं को और हमें शान्ति प्रदान करो । संसार भर की सब प्रजाएं आपस में प्रीति पूर्वक वर्तांव करती हुई सुख पूर्वक रहें और अपने जन्म को सफल करें । आपका, उपदेश है कि आपस में लड़ना झगड़ना कोई बुद्धिमत्ता नहीं, एक दूसरे से प्रेम पूर्वक रहना, मिलना जुलना यही सुखदायक है । अतएव आप प्रभु से प्रार्थना है कि, दयामय ! हम सब को शांति

प्रदान करो और हमारे गौ अश्वादि उपकारक पशुओं को भी अभय प्रदान करो ॥४॥

अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः ।
प्र प्रदातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥५॥ ११।८३॥

पदार्थः—हे ( अन्नपते ) अन्न के स्वामिन् ! ( नः ) हमें अन्नस्य ) अन्न को ( प्रदेहि ) प्रकर्ष से दो, ( अनमीवस्य ) जो अन्न रोग करने वाला न हो, ( शुष्मिणः ) बल कारक हो। ( प्रदातारम् ) अन्नदाता को (प्रतारिषः) तृप्तकर। ( नः द्विपदे ) हमारे दो पग वाले [ मनुष्य ] तथा ( चतुष्पदे ) चार पग वाले गौ अश्वादि पशुओं के लिये ( ऊर्जम ) पराक्रम को ( धेहि ) धारण कराओ।

भावार्थः—हे अन्नादि उत्तम पदार्थों के स्वामिन् ! आप कृपा करके रोग नाशक और

बलवर्धक अन्न हम को दो, और अन्नदाता पुरुष का उद्धार करो। हमारे दो पग वाले भ्रातृ-गण मनुष्य, और चार पग वाले गौ अश्वादि पशु, जो सदा हम पर उपकार कर रहे हैं, जिनका जीवन ही पर उपकार के लिये है। इन में भी पराक्रम धारण कराओ ॥५॥

तनूपा अ॑ग्नेऽसि त॒न्वं॑ मे पाह्यायु॒र्दा अ॑ग्नेऽस्या॒-
यु॑र्मे॑ देहि। वर्चो॒दा अ॑ग्नेऽसि॒ वर्चो॑ मे देहि।
अग्ने॒ यन्मे॑ त॒न्वा॒ ऊ॒नं तन्म॒ आपृ॑ण ॥६॥
३।१७॥

पदार्थ—हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप परमात्मन्! आप (तनूपा असि) हमारे शरीरों की रक्षा करने हारे हैं, (मे तन्वम्) मेरे शरीर की (पाहि) रक्षा करो। हे (अग्ने) परमेश्वर! (आयुर्दा असि) आप आयु-जीवन के दाता हो, (मे आयु देहि) मुझे जीवन प्रदान करो।

हे ( अग्ने ) पूज्य प्रभो ! ( वर्चोदाः असि ) आप तेज दाता हैं ( मे ) मुझे ( वर्चः देहि ) तेज प्रदान करें। हे ( अग्ने ) परमेश्वर ( यत् मे तन्वा ) जो मेरे शरीर में ( ऊनम् ) न्यूनता हो ( मे ) मेरी ( तत् ) उस न्यूनता को ( आपृण ) पूर्ण कर दो।

भावार्थः—हे सर्वरक्षक जगदीश ! आप सब के शरीरों की रक्षा करने वाले और आयुष् प्रदान करने वाले हैं। अतः आपके पुत्र जो हम हैं, इनकी रक्षा करते हुए लम्बी आयु वाला हमें बनाओ। हम पाप और दुराचार में फँस कर कभी नष्ट भ्रष्ट न हों। दयामय भगवन् ! अविद्या आदि दोषों को दूर करने वाला वर्चस् जो ब्रह्म तेज है, उसके दाता भी आपही हो, हमें भी वह तेज प्रदान करो, जिससे हम अपना और अपने स्नेहियों का कल्याण कर सकें। भगवन् ! आप सर्वगुण सम्पन्न हो, हमारी न्यूनता दूर करके हमें अनेक शुभगुण सम्पन्न करो,

ऐसी हमारी नम्र प्रार्थना को स्वीकार करें ॥६॥

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु। शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥७॥ ३६।२॥

पदार्थ—(मे) मेरे (चक्षुषः) नेत्र (हृदयस्य) हृदय (मनसः) और मन का (यत् छिद्रम्) जो छिद्र वा त्रुटि हो (वा) और जो इन इन्द्रियों का छिद्र (अति तृण्णम्) अति पीड़ित वा व्याकुलता है (तत्) उस (मे) मेरे दोष को (बृहस्पतिः) सब बड़े बड़े लोक लोकान्तरों का स्वामी परमेश्वर (दधातु) ठीक करे। (यः) जो (भुवनस्य) सारे जगत् का (पतिः) स्वामी है वह (नः) हम सब का (शम्) कल्याण कारक (भवतु) होवे।

भावार्थ—हे सब बड़े बड़े ब्रह्माण्डों के कर्ता, हर्ता और नियन्ता परमात्मन्! जो मेरे नेत्र, हृदय, मन

वाणी श्रोत्रादिकों का छिद्र, अर्थात् तुच्छता, निर्वलता और मन्दत्वादि दोष हैं, इनको निवारण कर के, मेरे सब बाह्य इन्द्रिय और अन्तःकरण को सत्य धर्मादिकों में स्थापन करें। जिससे हम सब आपकी वैदिक आज्ञा का पालन करते हुए, सदा कल्याण के भागी बनें। हे सारे भुवनों के स्वामिन्! हम आप के पुत्र हैं, अपने पुत्रों पर कृपा करते हुए हम सब का कल्याण करें॥७॥

स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदा असि वर्चो मे देहि। सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते॥८॥ २।२६॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर! आप (स्वयंभूः असि) अजन्मा अनादि हैं (श्रेष्ठः) अत्यन्त प्रशंसनीय, (रश्मिः) प्रकाशमान (वर्चोदाः) विद्या वा प्रकाश देने वाले (असि) हैं, (वर्चो मे देहि) मुझे विद्या वा प्रकाश दो। (सूर्यस्य) चराचर जगत् के आत्मा जो आप भगवान् वा

इस भौतिक सूर्य के ( आवृतम् ) आवरण को मैं ( अनु आवर्त्ते ) स्वीकार करता हूँ ।

भावार्थः—हे अजन्मा सर्वोत्तम ज्ञानस्वरूप विज्ञानप्रद परमात्मन् ! आप बड़े २ ऋषि महर्षियों को भी वैदिक ज्ञान और आत्मज्ञान के देने वाले हैं, कृपया हमें भी ब्रह्मज्ञानरूप वर्चस् देकर श्रेष्ठ बनावें। चराचर जगत् के आत्मा सूर्य जो आप, उस आपकी आज्ञा का पालन करते हुए हम, सबको उपदेश देकर आपका सच्चा ज्ञानी और प्रेमी-भक्त बनावें । यह भौतिक सूर्य जैसे अन्धकार का नाशक और सबका उपकार कर रहा है, ऐसे हम भी अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश करते हुए सबके उपकार करने में प्रवृत्त होवें ॥८॥

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यो देवानां नामधा

एकं एव तथं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥६॥

१७।२७॥

पदार्थः—( यः ) जो परमेश्वर ( नः पिता ) हम सब का पालन करने वाला ( जनिता ) जनक ( यः विधाता ) जो सब सुख और मुक्ति सुख का भी सिद्ध करने वाला है, ( विश्वा भुवनानि ) सब लोक लोकान्तरों तथा ( धामानि ) स्थिति के स्थानों को ( वेद ) जानता है। ( यः देवानाम् ) जो भगवान् दिव्य शक्ति वाले सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि देवों के ( नामधा ) नामों को धारण कर रहा है वह ( एकः एव ) एक ही अद्वितीय परमात्मा है। ( तम् संप्रश्नम् ) उसी जानने योग्य परमेश्वर को आश्रय करके ( अन्या भुवना यन्ति ) अन्य सब लोक लोकान्तर गति कर रहे हैं।

भावार्थः—जो परमेश्वर, हम सबका रक्षक

जनक और हमारे सब कर्मों का फल प्रदाता है, वही भगवान् सब लोक लोकान्तरों का ज्ञाता और अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, वरुण, मित्र, वसु, यम, विष्णु, बृहस्पति, प्रजापति आदि दिव्य, देवों के नामों को धारण करने वाला, एक ही अद्वितीय अनुपम परमात्मा है, उसी परमात्मा के आश्रित होकर, अन्य सब लोक गति शील हो रहे हैं। दुर्लभ मानव देह को प्राप्त होकर, इसी परमात्मा की जिज्ञासा करनी चाहिये। इसीके ज्ञान से मनुष्य देह सफल होगा अन्यथा नहीं ॥९॥

दृते दृंह मा ज्योक्ते संदृशि जीव्यासं ज्योक्ते। संदृशि जीव्यासम् ॥१०॥३६।१९॥

पदार्थः—हे (दृते) अविद्या रूपी अन्धकार के विनाशक परमात्मन्! (मा) मुझको (दृंह) दृढ़ कीजिये, जिससे मैं (ते) आपके (संदृशि) यथार्थ ज्ञान में (ज्योक्) निरन्तर

(जीव्यासम्) जीवन धारण करूं, (ते) आपके (संदृशि) साक्षात्कार में प्रवृत्त हुआ बहुत समय तक मैं जीता रहूँ।

भावार्थः—मनुष्य को योग्य है कि, ब्रह्मचर्यादि साधन संपन्न हुए और युक्त आहार विहार पूर्वक औषध आदि सेवन करके दीर्घजीवी बनें और परमात्मा का यथार्थज्ञान अवश्य संपादन करें; क्योंकि परमात्मा के ज्ञान के बिना बहुत काल तक जीना भी व्यर्थ ही है। अतएव इस मन्त्र में प्रभु से प्रार्थना की गई है कि, हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन्! आप कृपा करें कि मैं दीर्घ काल तक जीता हुआ आपके ज्ञान और सच्ची भक्ति को प्राप्त होकर अपने मनुष्य जन्म को सफल करूं॥१०॥

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।
नैनमूर्ध्वं न तिर्य्यञ्चं न मध्ये परि जग्रभत्॥

॥११॥३२।२॥

पदार्थः—( विद्युतः ) विशेष प्रकाशमान् ( पुरुषात् ) सर्वत्र पूर्ण परमात्मा से ( सर्वे ) सब ( निमेषाः ) उत्पत्ति स्थिति प्रलयादि क्रियाएं ( अधिजज्ञिरे ) उत्पन्न होती हैं। कोई भी ( एनम् ) इसको ( न ऊर्ध्वम् ) न ऊपर से ( न तिर्य्यञ्चम् ) न तिरच्छे ( न मध्ये ) न बीच में से ( परिजग्रभत् ) सब ओर से ग्रहण कर सकता है।

भावार्थः—जिस सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् प्रकाशमान् पूर्ण परमात्मा से, क्षण, घटिका, दिन, रात्रि आदि काल के सब अवयव उत्पन्न हुए हैं, और जिस से सारे जगतों की उत्पत्ति स्थिति प्रलय नियमनादि होते हैं, उस जगत्पिता परमात्मा को, कोई भी नीचे ऊपर बीच में वा तिरछे ग्रहण नहीं कर सकता। ऐसे पूर्ण जगदीश परमात्मा को योगाभ्यास, ध्यान, उपासनादि साधनों से ही, जिज्ञासु पुरुष जान सकता है, अन्यथा नहीं ॥११॥

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥
॥१२॥३२।१॥

पदार्थः—( तत् ) वह ब्रह्म ( एव ) ही ( अग्निः ) अग्नि है। ( तत् ) वह ( आदित्यः ) आदित्य, ( तत् वायु ) वह वायु, ( तत् उ चन्द्रमाः ) वह निश्चय चन्द्रमा है। ( तत् एव शुक्रम् ) वह ही शुक्र, ( तत् ब्रह्म ) वह ब्रह्म है। ( ताः आपः ) वह आप ( स प्रजापतिः ) वह ही प्रजापति है।

भावार्थः—इस परब्रह्म के यह अग्नि आदि सार्थक नाम हैं, निरर्थक एक भी नहीं। अग्नि नाम परमात्मा का इसलिये है कि वह सर्वव्यापक, स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूप, सब का अग्रणी नेता और परम पूज्यनीय है। अविनाशी होने से और सारे जगत् का प्रलयकर्ता होने से उसका नाम

आदित्य है। अनन्त बलवान् होने से उसको वायु कहते हैं। सब प्रेमी भक्तों को आनन्द देता है, इस लिये उस जगत्पति का नाम चन्द्रमा है। शुद्ध पवित्र ज्ञानस्वरूप होने से शुक्र, और सब से बड़ा होने से ब्रह्म, सर्वत्र व्यापक होने से आपः, सब प्रजाओं का स्वामी, पालक और रक्षक होने से उस जगत्पिता को प्रजापति कहते हैं। ऐसे ही सब वेदों में, परमात्मा के सार्थक अनन्त नाम निरूपण किये हैं, जिनको स्मरण करता हुआ पुरुष कल्याण को प्राप्त हो जाता है ॥१२॥

पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन।
स्तोतारस्त इह स्मसि ॥१३॥ ३४।४१॥

पदार्थः—हे (पूषन्) पुष्टिकारक परमात्मन्! (तव) आपके (व्रते) नियम में रहते हुए (वयम्) हम लोग (कदाचन) कभी भी (न रिष्येम) पीड़ित वा दुःखी न हों। (इह)

इस जगत् में ( ते ) आपके ( स्तोतारः ) स्तुति करते हुए हम सुखी ( स्मः ) होते हैं।

भावार्थः—हे सबके पालन पोषण करने वाले परमात्मन्! आपके अटल सृष्टि नियमों के अनुसार अपना जीवन बनाने वाले हम आपके सेवक, इस लोक वा परलोक में कभी दुःखी नहीं हो सकते इसलिये आपकी प्रेम पूर्वक स्तुति करने वाले हम, सदा सुखी होते हैं। आप परम पिता हम पर कृपा करें कि, हम आपकी श्रद्धा भक्ति पूर्वक उपासना प्रार्थना और स्तुति नित्य किया करें ॥१३॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता, धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥१४॥

३२।१०॥

पदार्थः—( सः ) वह परमेश्वर ( नः ) हम सबका ( बन्धुः ) भाई के समान मान्य और

सहायक है। (जनिता) -जनयिता अर्थात् हमारे सबके शरीरों का उत्पन्न करने हारा है। (स विधाता) वही जगदीश सब पदार्थों का और सबके कर्मों का फलप्रदाता है। (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक लोकान्तरों और (धामानि) सबके जन्मस्थान और नामों को (वेद) जानता है। (यत्र) जिस परमेश्वर में (देवाः) विद्वान् लोग (अमृतम्) मोक्ष सुख को (आनशानाः) प्राप्त होते हुए (तृतीये) जीव प्रकृति से विलक्षण तीसरे (धामन्) आधाररूप जगदीश्वर में रमण करते हुए (अध्यैरयन्त अपनी इच्छा पूर्वक सर्वत्र विचरते हैं।

भावार्थः—जो जगत्पति, हम सबका बन्धु और सबका जनक, सबके कर्मों का फलप्रदाता, सब लोक लोकान्तरों को, और सबके जन्मस्थान और नामों को जानता है, वह जीव और प्रकृति से विलक्षण है। उसी परमात्मा में विद्वान्

लोग, मुक्ति सुख को अनुभव करते हुए, अपनी इच्छा पूर्वक सर्वत्र विचरते हैं ॥१४॥

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहासद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्। तस्मिन्निदꣳसं च वि चैति सर्वꣳ स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु॥१५॥३२ । ८॥

पदार्थः— ( वेनः ) ब्रह्मज्ञानी पुरुष (तत्) उस ब्रह्म को जो ( गुहा निहितम् ) बुद्धिरूपी गुफा में स्थित तथा ( सत् ) तीन कालों में वर्तमान, नित्य है, उसको ( पश्यत् ) प्रत्यक्ष अनुभव करता है, ( यत्र ) जिस ब्रह्म में ( विश्वम् ) सारा संसार ( एक नीडम् ) एक आश्रय को ( भवति ) प्राप्त होता है, ( तस्मिन् ) उसी ब्रह्म में ( इदम् सर्वम ) यह सब जगत् ( सम् एति च ) प्रलयकाल में संगत होता अर्थात् लीन होता है। और उत्पत्तिकाल में ( विएति च )

पृथक् स्थूल रूप को भी प्राप्त होता है। ( सः ) वह जगदीश ( विभूः ) विविध प्रकार व्याप्त हुआ ( प्रजासु ) प्रजाओं में ( ओतः प्रोतः च ) ओत और प्रोत है।

भावार्थः—ब्रह्मज्ञानी पुरुष, उस ब्रह्म को अपनी बुद्धि रूपी गुफ़ा में स्थित देखता है, जो ब्रह्म सत्य होने से नित्य त्रिकालों में अबाध्य और सारे संसार का आश्रय है। यह सब जगत्, प्रलय काल में जिसमें लीन होता और उत्पत्तिकाल में जिससे निकल कर स्थूलरूप को प्राप्त होता है, और बने हुए सब जगत् में व्यापक, वस्त्र में ताने पेटे के समान सर्वत्र भरा हुआ है। ऐसे ब्रह्म को ही ब्रह्मज्ञानी जानता और अनुभव करता हुआ कृतार्थ होता है ॥१२॥

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व। विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति

देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥१६॥३४।५८॥

पदार्थः—हे ( ब्रह्मणः पते ) ब्रह्माण्ड के स्वामिन्, वा वेद रक्षक प्रभो ! ( देवाः ) वेद-वेत्ता विद्वान् ( यत् ) जिसकी ( विदथे ) पठन पाठनादि व्यवहार में (अवन्ति) रक्षा करते हैं। और ( यत् ) जिस (बृहत्) बड़े श्रेष्ठ का ( वयम् सुवीराः ) हम उत्तम वीर पुरुष ( वदेम ) कहें, ( अस्य सूक्तस्य ) अच्छे प्रकार कहे इस वेद के ( त्वम् ) आप ( यन्ता ) नियम पूर्वक दाता हैं, ( च ) और ( तनयम् ) अपने पुत्र तुल्य मनुष्य मात्र को ( बोधि ) बोध करावें, ( तत् ) उस (भद्रम्) कल्याणमय वेदामृत से ( विश्वम् ) सब संसार को ( जिन्व ) तृप्त कीजिये।

भावार्थः—हे सकल संसार के और वेदों के रक्षक परमात्मन्! आप हमारी विद्या और सत्य व्यवहार के नियम करने वाले होवें। सारे संसार

के मनुष्य जो आप के ही पुत्र हैं, उनके हृदय में वेदों में प्रेम और दृढ़ विश्वास उत्पन्न करें, जिस से वेदों को पढ़ सुनकर, उनके कल्याण मय वैदिक ज्ञान से, तृप्त हुए सारे संसार को तृप्त करें ॥१६॥

प्रनूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् । यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥१७॥ ३४।५७॥

पदार्थः—( यस्मिन् ) जिस परमेश्वर में ( इन्द्रः ) बिजुली वा सूर्य ( वरुणः ) जल वा चन्द्रमा ( मित्रः ) प्राण अपानादि वायु (अर्यमा) सूत्रात्मा वायु ( देवाः ) ये सब उत्तम गुणवाले ( ओकांसि ) निवासों को ( चक्रिरे ) किये हुए है, वहां ( ब्रह्मणः पतिः ) सारे ब्रह्माण्ड का और वेद का रक्षक जगदीश (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय पदार्थों में श्रेष्ठ ( मन्त्रम् ) वेद रूप मन्त्र

भाग को ( नूनम् ) निश्चय कर ( प्रवदति ) अच्छे प्रकार कहता है ।

भावार्थः—जिस परमात्मा में, कार्य कारण रूप सब जगत् और सब जीव निवास कर रहे हैं, उन जीवों के कल्याण के लिये, जिस दयामय परमात्मा ने मन्त्र भाग रूपी वेद बनाये, उन वेदों को पढ़ते पढ़ाते सुनते सुनाते हुए हम लोग, उस जगत्पति परमात्मा को जानकर और उसी जगत्पिता की भक्ति करते हुए, कल्याणके भागी बन सकते हैं अन्यथा कदापि नहीं ॥१७॥

बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥१८॥ ३३।२४॥

पदार्थः—( येषाम् ) जिन उत्तम पुरुषों का ( इध्मः ) महातेजस्वी ( पृथुः ) विस्तार युक्त ( स्वरुः ) सूर्य के समान प्रतापी ( युवा ) नित्य युवा एक रस ( बृहत् ) सबसे बड़ा ( इन्द्रः )

परम ऐश्वर्य वाला परमेश्वर (सखा) मित्र है, (एषाम्) उन (इत्) ही का (भूरि) बहुत (शस्तम्) स्तुतिके योग्य कर्म होता है।

भावार्थः—जिन महानुभाव भद्र पुरुषों ने, विषय भोगो में न फँसकर, महातेजस्वी, सर्वव्यापक, सूर्यवत् प्रतापी, एकरस महाबली, सबसे बड़े परमेश्वर को, अपना मित्र बना लिया है; उन्हीं का जीवन सफल है। सांसारिक भोगों से विरक्त, परमेश्वर के ध्यान में और उसके ज्ञान में आसक्त, महापुरुषों के सत्संगसे ही, मुमुक्षु पुरुषों का कल्याण हो सकता है; न कि विषय लम्पट ईश्वर विमुखों के कुसंग से ॥१८॥

गर्भो देवानां पिता मतीनां पतिः प्रजानाम्। सं देवो देवेन सवित्रा गत सꣳ सूर्य्येण रोचते ॥१६॥ ३७।१४॥

पदार्थः—जो परमेश्वर (देवानाम्) विद्वानों

और पृथिवी आदि तेतीस देवों के (गर्भः) गर्भ की नाईं उत्पत्ति स्थान (मतीनाम्) मनन शील बुद्धिमान् मनुष्यों के (पिता) पालक (प्रजानाम्) उत्पन्न हुए पदार्थों का (पतिः) रक्षक स्वामी, (देवः) स्वप्रकाशस्वरूप परमात्मा (सवित्रा) सब संसार के प्रेरक (सूर्येण देवेन) सूर्य देव के समान (सरोचते) सम्यक् प्रकाश कर रहा है उसको हे मनुष्यो! (समगत्) आप लोग सम्यक् प्राप्त होवो।

भावार्थः—जो जगत्पिता परमात्मा, सबका उत्पादक, पिता के तुल्य सबका और विशेष कर विद्वानों का पालक, सूर्यादि प्रकाशकों का भी प्रकाशक, सर्वत्र व्यापक जगदीश्वर है; उसी पूर्ण परमात्मा की हम सब लोग, सदैव प्रेम से उपासना किया करें, जिससे हमारा सब का कल्याण हो ॥१९॥

संवर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा

सꣳशिवेन । त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायो-
ऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥२०॥ २।२४॥

पदार्थः—(वर्चसा) वेदों के स्वाध्याय और योगाभ्यास करने से प्राप्त जो ब्रह्मतेज (पयसा) पुष्टि कारक दुग्ध घृतादि ( तनूभिः ) नीरोग शरीर और ( शिवेन मनसा ) कल्याणकारी पवित्र मन से ( सम् अगन्महि ) सम्यक् संयुक्त रहें। (सुदत्रः) श्रेष्ठ पदार्थों का दाता, (त्वष्टा) जगत् उत्पादक प्रभु हमें ( रायः ) अनेक प्रकार का धन (विदधातु) प्रदान करे। (तन्वः) हमारे शरीर में ( यत् ) जो ( विलिष्टम्) विपरीत, अनिष्ट, उपघातक पदार्थ हो उसको ( अनुमार्ष्टु ) शुद्ध करें वा दूर करें।

भावार्थः—हे जगत् पिता अनेक उत्तम पदार्थों के प्रदाता परमेश्वर ! अपनी अपार कृपा से, हमें वेदों के स्वाध्याय शील, शरीर की पुष्टि करनें

वाले अनेक खाद्य पदार्थों के स्वामी, नीरोग शरीर वाले और कल्याण कारी शुद्ध मन से युक्त बनावें। हे सकल ऐश्वर्य के स्वामी इन्द्र! हम कभी दरिद्री दीन मलीन पराधीन रोगी न हों, किन्तु सदा सुखी रहते हुए उत्तम उत्तम पदार्थों के स्वामी हों ॥२०॥

पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः। पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥२१॥ १८।३६॥

पदार्थः—हे परमात्मन्! आप कृपा करके (पृथिव्याम्) पृथिवी में (पयः) पुष्टिकारक रस को (धाः) स्थापित करें। ऐसे ही (ओषधीषु) ओषधियों में (दिवि) द्युलोक में, और (अन्तरिक्षे) मध्य लोकमें (पयः धाः) पौष्टिक रस को स्थापित करें। (प्रदिशः) समस्त दिशाएं (मह्यम्) मेरे लिये (पयस्वतीः) पौष्टिक रस से पूर्ण (सन्तु) होवें ॥

भावार्थः—हे सबके पालन पोषण कर्ता सर्वाधार ! आप, इसके पुनः हम सब पर कृपा करें कि, आपकी नियत व्यवस्था के अनुसार जहां २ हमारा निवास हो, वहां वहां हम, अन्नादिकों के पौष्टिक रस से पुष्ट हुए, आपके स्मरण और उपासना में तत्पर रहें। पृथिवी में द्युलोक वा मध्य लोक में और पूर्व पश्चिमादि सब दिशाओं में रहते, आपकी प्रेमपूर्वक भक्ति, प्रार्थना, उपासना करते हुए सदा आनन्द में रहें ॥ २१ ॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति । शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥२२॥ ३६ ८॥

पदार्थः—(इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान परमेश्वर (विश्वस्य) सब चर और अचर जगत् को (राजति) प्रकाश करने वाला और सब का राजा स्वामी है। (नः) हमारे (द्विपदे) दो पांव वालों के लिये और (चतुष्पदे) चार पांव वालों के

लिये भी ( शम् अस्तु ) कल्याण कर्ता होवे।

भावार्थः—हे सर्वशक्तिमन् परमेश्वर ! आप सब चर और अचर जगतों के राजा और स्वामी हैं। आपकी दिव्य ज्योति से ही सूर्य चन्द्र बिजुली आदि प्रकाशित हो रहे हैं, आप सब जगतों के प्रकाशक हैं। भगवन् ! हमारे सब मनुष्यादि दो पांव वाले और गौ अश्वादि पशु, जो हम पर सदा उपकार कर रहे हैं, जिनका जीवन ही पर उपकार के लिये है, इनके लिये भी आप सदा सुख और कल्याण-कर्ता होवें ॥२२॥

**शं नो॑ दे॒वीर॒भिष्ट॑य॒ आपो॑ भवन्तु पी॒तये॑।**
**शंयोर॒भि स्र॑वन्तु नः ॥२३॥ ३६।१२॥**

पदार्थ — हे परमात्मन् ! ( देवीः आपः ) दिव्य गुण युक्त जल, महात्मा, विद्वान्, आप्त पुरुष, श्रेष्ठकर्म और ज्ञान ( नः अभिष्टये ) हमारे अभिलषित कार्यों के सिद्ध करने के लिये

( शम् नः ) हमें शान्ति दायक हों और वे ( पीतये भवन्तु ) पान और पालन रक्षण के लिये भी हों। वे ही ( नः ) हम पर (शंयोः अभिस्रवन्तु) शान्ति सुख के सब ओर से वर्षण करने और बहाने वाले हों। *

भावार्थः—हे जगदीश्वर ! हम पर आप कृपा करें कि दिव्य गुण वाले जलादि पदार्थ, आप्त वक्ता विद्वान् महात्मा लोग श्रेष्ठ कर्म और ज्ञान हमारे इष्ट कार्यों को सिद्ध करते हुए, हमें शान्ति दायक हों। ये ही हमारा पालन पोषण करके हम पर सब ओर से शान्ति सुख की वर्षा करने वाले हों ॥२३॥

**शं वातः शथंहि ते घृणिः शं ते भवन्त्विष्टकाः। शं ते भवन्त्वग्नयः पार्थिवासो मा**

---

* इस मन्त्र में "आपः" शब्द का अर्थ सर्वव्यापक परमात्मा भी। (सम्पादक)

त्वाभिशूशुचन् ॥२४॥ ३५।८॥

पदार्थः—हे जीव ! ( वातः ) वायु ( शम् ) सुखकारी हो। ( ते ) तेरे लिये ( घृणिः ) सूर्य ( हि ) भी ( शम् ) सुखकर हो। ( तें ) तेरे लिये ( इष्टकाः ) वेदी में चयन की हुई ईंटें अथवा ईंटों से बने हुए स्थान ( शम् ) सुखप्रद ( भवन्तु ) हों। ( ते ) तेरे लिये ( पार्थिवासः अग्नयः ) इस पृथिवी की अग्नि और बिजुली आदि ( शम् भवन्तु ) सुखकारक हों। यह सब अग्नि वायु सूर्य बिजुली आदि पदार्थ (त्वा) तुमको ( मा अभिशूशुचन ) न दग्ध करें, न सतावें, दुःख और शोक के कारण न हों।

भावार्थः—दयामय परमपिता परमात्मा, हम सब को वेद द्वारा उपदेश करते हैं कि, हे मेरे प्यारे पुत्रो ! आप सब को चाहिये कि, आप लोग ऐसे अच्छे धार्मिक काम करो और मेरी भक्ति प्रार्थना

उपासना में लगजाओ, जिस से अग्नि बिजुली सूर्यादि सब दिव्य देव आपको सुखदायक हों। प्यारे पुत्रो! यह सब पदार्थ आप लोगों को सुख देने के लिये ही मैंने बनाये हैं, दुःख देने के लिये नहीं।

दुःख तो अपनी अविद्या, मूर्खता, अधर्माचरण करने और प्रभु से विमुख होने से होता है। आप पापों को छोड़ कर प्रभु की शरण में आकर सदा सुखी हो जाओ ॥२४॥

कल्पन्तां ते दिशस्तुभ्यमापःशिवतमास्तुभ्यं भवन्तु सिन्धवः। अन्तरिक्षꣳशिवं तुभ्यं कल्पन्ता ते दिशःसर्वाः ॥२५॥ ३२।६॥

पदार्थः—हे जीव! (ते) तेरे लिये (दिशः) पूर्व पश्चिमादि दिशाएं, और इनमें रहने वाले प्राणिवर्ग (शिवतमाः) अत्यन्त सुखकारी (कल्पन्ताम्) हों। (आपः तुभ्यम् शिवतमाः)

जल तेरे लिये अत्यन्त कल्याणकारी हों। ( सिन्धवः तुभ्यम् शिवतमाः भवन्तु ) नदियां और समुद्र तेरे लिये अति सुखकारी हों। ( तुभ्यम् ) तेरे लिये ( अन्तरिक्षम शिवम् ) आकाश कल्याणकारी हो। ( ते ) तेरे लिये ( सर्वाः दिशः ) ईशानादि सब विदिशाएं अत्यन्त कल्याण कारी ( कल्पन्ताम् ) होवें।

भावार्थः—परम कृपालु परमात्मा, जीव मात्र अपने पुत्रों को उत्तम उपदेश करते हैं। हे मेरे प्यारे पुत्रो ! आप लोग यदि पापाचरण को छोड़ कर, सदा वेदानुकूल, अपना आचरण बनाते हुए, मेरी प्रेम भक्ति में लग जावें तो. आप के लिये, सब दिशा, उपदिशा, सब जल, सब नदियां, समुद्र, अन्तरिक्ष और इनमें रहने वाले सब प्राणी और सब पदार्थ अत्यन्त मंगलकारी हों ॥२१॥

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्द्धन्तु या मम।

पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभिस्तोमैरनूषत ॥२६॥ ३३।८१॥

पदार्थः—हे ( पुरूवसो ) बहुत पदार्थों में बास करने वाले परम-पिता परमात्मन् ! ( याः इमाः ) जो यह ( मम गिरः ) मेरी वाणियें (उ) निश्चय कर के ( त्वा वर्द्धन्तु ) आप को बढ़ावें [आपकी महिमा का प्रचार करें] ( पावक वर्णाः ) अग्नि के तुल्य वर्ण वाले महा तेजस्वी (शुचयः) पवित्र हृदय (विपश्चितः) विद्वान् जन (स्तोभैः) स्तुति वचनों से (अभि अनूषत) प्रशंसा करें ।

भावार्थः—हे सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामिन् प्रभो ! हम सब मुमुक्षु जनों को योग्य है कि, हम सब की वाणियें आपकी महिमा को बढ़ावें । सब विद्वान् पवित्र हृदय, महा तेजस्वी, महात्मा लोगों को भी चाहिये कि, आप की प्रेम पूर्वक उपासना प्रार्थना और स्तुति करने में लग जावें । क्योंकि

आप की भक्ति से ही हम सबका जन्म सफल हो सकता है। आपकी भक्ति के विना, विद्वान् हो चाहे अज्ञानी किसी का भी जन्म सफल नहीं हो सकता। इस लिये हम सबको योग्य है कि हम सब लोग, उस दयामय अन्तर्यामी जगदीश्वर की, पवित्र वेद मंत्रों से प्रार्थना उपासना और स्तुति किया करें॥२६॥

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्य्याय त्वा।
ऊर्ध्वो अध्वरं दिवि देवेषु धेहि ॥२७॥

३७।१९॥

पदार्थः—हे जगदीश ! ( हृदे त्वा ) हृदय की चेतनताके लिये आपको, (मनसे त्वा) ज्ञान युक्त अन्तःकरणकी प्राप्तिके लिये आपको,(दिवे-त्वा) विद्या के प्रकाश वा बिजुली विद्या की प्राप्ति के लिये आपको (सूर्याय त्वा) सूर्यादि लोकों के ज्ञानकी प्राप्ति अर्थ आपको हम लोग ध्यावें [ आप का ध्यान धरें ] ( ऊर्ध्व ) सबसे ऊंचे अर्थात

उत्कृष्ट आप ( दिवि ) उत्तम व्यवहार और ( देवेषु ) विद्वानों में ( अध्वरम् ) हिंसा रहित यज्ञका ( धेहि ) स्थापन करें।

भावार्थः—हे दयामय जगद्रक्षक परमात्मन् आप कृपा करें, हमारा हृदय चेतन स्फूर्ति वाला हो। और अन्तःकरण ज्ञान युक्त हो, आत्मविद्या का प्रकाश हो। बिजुली, अग्नि, सूर्य, वायु आदि विद्याओं की प्राप्ति के लिये सदा आप का ही ध्यान धरें। आप सारे संसार के विद्वानों में अहिंसामय यज्ञ का विस्तार कर रहे हैं अहिंसक प्राणी की कोई हिंसा न करे। सारे संसार में शान्ति का राज्य हो, कोई किसी को दुःख न देवे। मनुष्यमात्र सब एक दूसरे के मित्र बन कर, एक दूसरे के हित करने में प्रवृत्त हों, कोई किसी की हानि न करे ॥२७॥

त्वमंग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानांम-

भवः शिवः सखा। तव व्रते कवयो विद्म-
नापसोऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥२८॥
३४।१२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) स्वप्रकाश जगदीश्वर! (त्वम्) आप (प्रथमः) सबसे प्रथम प्रख्यात (अङ्गिराः) जीवात्माओं को सुख देनेवाले (ऋषि) ज्ञानी (देवानाम्) विद्वानों में (देवः) उत्तम गुण कर्म स्वभाव युक्त (शिवः) कल्याणकारी (सखा) मित्र (अभवः) हैं। (तव व्रते) आपके नियम में (कवयः) मेधावी (विद्मनापसः) सब कर्मों के ज्ञाता (भ्राजदृष्टयः) प्रदीप्त है दृष्टि जिनकी ऐसे (मरुतोऽजायन्त) मनुष्य प्रकट हो जाते हैं।

भावार्थः—हे प्रकाशस्वरूप ज्ञानप्रद प्रभो! आप सबसे प्रथम प्रसिद्ध, जीव के सुखदाता, महा-ज्ञानी, विद्वान् महात्माओं के कल्याण कारक, और

सच्चे मित्र हैं। जो महापुरुष मेधावी उज्ज्वल बुद्धि वाले, आपके बनाये नियमों के अनुसार अपना जीवन बनाते हैं, वे ही आपकी आज्ञा मानते हुए सदा सुखी होते हैं ॥२८॥

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा।
कया शचिष्ठया वृता ॥२९॥ ३६।४॥

पदार्थः—( सदा वृधाः ) सदा से महान् प्रभु, ( चित्रः ) आश्चर्य कारक और आश्चर्य-स्वरूप, ( कया ऊती ) सुखकारक रक्षण से ( कया शचिष्ठया ) सुखमय अपनी अतिशक्ति द्वारा ( वृता ) वर्तमान ( नः ) हम सब का ( सखा ) मित्र (आभुवत्) सदा बना रहता है।

भावार्थः—सदा से महान् वह जगदीश्वर, आश्चर्य-स्वरूप और आश्चर्यकारक है। वह आनददायक रक्षण से और अपनी आनन्दकारक महाशक्ति द्वारा, हम सबकी रक्षा करता हुआ, हमारा सच्चा मित्र बना

रहता है। ऐसे सदा सुखदायक सच्चे मित्र परमात्मा की, शुद्धमन से भक्ति करनी हमारा सबका कर्तव्य है ॥ ७६॥

कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सद्-न्धसः। दृढा चिदारुजे वसु ॥२७॥ ३६।५॥

पदार्थः—हे जीव (अन्धसः) अन्नादि भोग्य पदार्थों के (मदानाम्) आनन्दों से (मंहिष्ठः) अधिक आनन्दकारक और (सत्यः) तीनों कालों में एक रस (कः) सुखस्वरूप (चित्) ज्ञानी परमात्मा, (त्वा) तुमको (मत्सत्) आनन्दित करता है और (दृढा वसु) बल कारक धनों को (आरुजे) दुःख नाश के लिये देता है।

भावार्थः—हे मनुष्यो। वह सत् चित् और आनन्द स्वरूप जगत्पिता परमात्मा, अन्नादि भोग और बलयुक्त धन, अनेक विपत्तियों के दूर करने

के लिये तुम मनुष्यों को, देकर आनन्दित करते हैं, ऐसे दयालु परमपिता को कभी भूलना नहीं चाहिये ॥१०॥

अभी षु णः सखीनामविता जरितृणाम् ।
शतं भवास्यूतिभिः ॥११॥ ३६।६॥

पदार्थः—हे परमेश्वर! (नः सखीनाम्) हम सब आप के प्रेमी मित्रों के और (जरितृणाम्) उपासकों के (शतम् ऊतिभिः) सैंकड़ों रक्षणों से (अभिषु अविता) चारों ओर से उत्तम रक्षक (भवसि) आप होते हैं।

भावार्थः—हे सबके रक्षक परमप्यारे जगदीश्वर! आप अपने मित्रों और उपासकों का अनेक प्रकार से अत्युत्तम रक्षण करते हैं। भगवन्! न्यूनता हमारी ही है, जो हम संसार के भोगों में लम्पट होकर संसारी पुरुषों को अपना मित्र और उनके ही सेवक और उपासक बने रहते हैं। इसमें

अपराध हमारा ही है, जो हम आपके प्यारे मित्र और उपासक नहीं बनते ॥३१॥

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचꣳ राजसु नस्कृधि ।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु, मयि धेहि रुचा रुचम्॥
॥३२॥१८।४८॥

पदार्थः—( नः ब्राह्मणेषु ) हमारे ब्राह्मणों में ( रुचम् ) तेज और परस्पर प्रेम ( धेहि प्रदान करो । ( नः राजसु ) हमारे राजाओं में ( रुचम् कृधि ) तेज और प्रेम स्थापन करो। ( विश्येषु शूद्रेषु ) वैश्य और शूद्रों में ( रुचम् धेहि ) तेज और प्रेम स्थापन करो । ( मयि ) मेरे में भी ( रुचा ) अपने तेज और प्रेम द्वारा ( रुचम् धेहि ) सबसे प्रेम और तेजको स्थापन करो ।

भावार्थः—हे विशाल प्रेम ज्ञान और तेज के भण्डार परमात्मन् ! हमारे ब्राह्मणादि चारों वर्णों

को, वेदों के स्वाध्याय और योगाभ्यासादि साधनों से उत्पन्न जो ब्रह्म तेज उस तेज से सम्पन्न करो। इन चारों वर्णों म आपस में प्रेम भी उत्पन्न करो, जिससे एक दूसरे के सहायक बनते हुए सब सुखी हों। वेदादि सत्य शास्त्रों की विद्या और परस्पर प्रेम के विना, कभी कोई सुखी नहीं हो सकता। इसी लिये आप दयालु पिता ने इस मन्त्र द्वारा, हमें बताया कि मेरे प्यारे पुत्रो! तुम लोग मुझ से ब्रह्म-विद्या और परस्पर प्रेम की प्रार्थना करो, जिससे आप लोग सदा सुखी होओ ॥३ ॥

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना॥
॥२३॥२०।२५॥

पदार्थः—( यत्र ) जिस देश में ( ब्रह्म ) वेद वेत्ता ब्राह्मण ( च ) और (क्षत्रं च) विद्वान् शूर वीर क्षत्रिय ये दोनों ( सम्यञ्चौ )

अच्छी प्रकार से मिलकर ( सह ) एक साथ ( चरतः ) विचरण करते हैं अर्थात् विद्यमान रहते हैं और ( यत्र ) जहां ( देवाः ) विद्वान् ब्राह्मण और क्षत्रिय जन ( सह अग्निना ) ज्ञान स्वरूप परमात्मा की प्रार्थना उपासना करते और अग्निहोत्र आदि वैदिक कर्मों के करने से ईश्वर की आज्ञा का पालन करते, उसीका ध्यान करते और उसीके साथ रहते हैं ( तम् लोकम् ) उस देश और उस जन समाज को मैं (पुण्यम्) पवित्र और ( प्रज्ञेपम् ) उत्कृष्ट जानता हूँ ।

भावार्थः—परमात्मा हम सबको वेदद्वारा उपदेश देते हैं कि, जिस देश वा जनसमाज में, वेदवेत्ता सच्चे ब्राह्मण और शूरवीर क्षत्रिय, मिलकर काम करते हैं, वह देश और जनसमुदाय पवित्र भाग्यशाली है । वही देश और जनसमुदाय परम सुखी है । उस देश के वासी विद्वान् लोग, अग्निहोत्रादि वैदिक कर्म करते और जगदीश्वर का ध्यान

धरते, और उस परमपिता परमात्मा के साथ रहते हैं। धन्यवाद है ऐसे देश को और उसके वासी परमेश्वर के प्यारे विद्वान् महापुरुषों को, जो प्रभु के भक्त बनकर, दूसरों को भी परमेश्वर का भक्त बनाते हैं ॥३३॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं, तन्मे मनः शिवसंङ्कल्पमस्तु ॥३४॥ ३४।१॥

पदार्थः—हे सर्वव्यापक जगदीश्वर! (यत्) जो मुक्त जीवात्मा का (मनः) संकल्प विकल्प करने वाला अन्तः करण (दैवम्) ज्ञानादि दिव्य-गुणों वाला और प्रकाशस्वरूप (जाग्रतः) जागते हुए का (दूरम् उद् आ एति) दूर २ देशों में जाया करता है और (सुप्तस्य) सोते हुए (मुक्त) का (तथा एव) उसी प्रकार (एति) भीतर आ जाता है (तत्) वही मन

( उ ) निश्चय से ( ज्योतिषाम् ) सूर्य चन्द्रादि प्रकाशकों का और नाना विषयों के प्रकाश करने वाले इन्द्रियगण का ( ज्योतिः ) प्रकाशक है, और वही मन ( दूरङ्गमम् ) दूर तक पहुँचने वाला ( तत् ) वह ( मे मनः ) मेरा मन ( शिव संकल्पम् ) शुभ कल्याण मय संकल्प करने वाला ( अस्तु ) हो।

भावार्थः—हे सर्वान्तर्यामी सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ! आपकी कृपा से मेरा मन, शुभमंगलमय कल्याण का सङ्कल्प करने वाला हो, कभी दुष्ट सङ्कल्प करने वाला न हो, क्योंकि यह मन अति चंचल है, जागृत अवस्था में दूर २ तक भागता फिरता है। जब हम सोजाते हैं तब भी यह मन अन्दर ही भटकता रहता है; वही दिव्य मन दूर २ देशों में आने जाने वाला और ज्योतियों का ज्योति है। क्योंकि मन के विना किसी ज्योति का ज्ञान नहीं हो सकता। दयामय परमात्मन् ! यह मन

आपकी कृपा से ही शुभ सङ्कल्प वाला हो सकता हैं ॥४॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः। यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२५॥ ३४।२॥

पदार्थः—(येन) जिस मन से (अपसः) कर्म करने वाले उद्यमी और (मनीषिणः) दृढ़ निश्चय वाले ज्ञानी और (धीराः) ध्यान करने वाले महात्मा लोग (विदथेषु ज्ञानयुक्त व्यवहारों और युद्धादिकों में और (यज्ञे) यज्ञ वा परम-पूज्य परमात्मा की प्राप्ति के लिये (कर्माणि) अनेक उत्तम कर्मों का (कुर्वन्ति) सेवन करते हैं, और (यत्) जो (प्रजानामन्तः) सब प्रजाओं के अन्तर मध्य में (अपूर्वम्) अद्भुत सबसे श्रेष्ठ (यक्षम्) पूजनीय. सब इन्द्रियों का

प्रेरणा करने वाला है ( तत् मे-मनः ) वह ऐसा मेरा मन ( शिवसङ्कल्पम्-अस्तु ) शुभ सङ्कल्प वाला हो ।

भावार्थः—हम सब जिज्ञासु पुरुषों को चाहिये कि, अपने मन को बुरे कर्मों से हटाकर परमेश्वर की उपासना, सुन्दर विचार, वेद विद्या, उत्तम महात्माओं के सत्सङ्ग में अपने मन को लगावें । क्योंकि जो उत्तम यज्ञादि कर्म करने वाले परमज्ञानी अपने मन को वश में करने वाले और ध्याननिष्ठ धीर मेधावी पुरुष हैं, ये सब अधर्माचरण से अपने मन को हटाकर, श्रेष्ठ ज्ञान कर्म और योगाभ्यासादि में मन को लगाते हैं। मेरा मन भी दयामय परमात्मा की कृपा से उत्तम सङ्कल्प और परमात्मा के ध्यान में संलग्न हो ॥३४॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु । यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म

क्रियते, तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२६॥
३४।३॥

पदार्थः—( यत् ) जो ( प्रज्ञानम् ) विशेष कर उत्तम ज्ञान का साधन ( चेतः ) स्मरण करने वाला ( धृतिः च ) धैर्यस्वरूप और लज्जादि करने वाला ( यत् प्रजासु ) जो प्राणियों के भीतर ( अन्त ) अन्तःकरण में ( अमृतम् ) नाश रहित ( ज्योतिः ) प्रकाश है, ( यस्मात् ऋते ) जिसके विना ( किम्, चन ) कोई भी ( कर्म ) काम ( न क्रियते ) नहीं किया जाता ( तत् मे मनः ) वह सब कामों का साधन मेरा मन ( शिव सङ्कल्पम् अस्तु ) शुभ सङ्कल्प वाला और परमात्मा में इच्छा करने वाला हो।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अन्तःकरण मन बुद्धि, चित्त और अहङ्काररूप वृत्ति वाला होने से चार प्रकार का है। मनन करने से मन, निश्चय

करने से बुद्धि, स्मरण करने से चित्त और अहङ्कार करने से अहङ्कार कहलाता है। और यह मन शरीर के भीतर प्रकाश, स्मरण, धैर्य और लज्जा आदि करने वाला और सब प्राणियों के कर्मों का साधक अविनाशी मन है, उसको अशुभ कर्मों से हटाकर अच्छे कर्मों में लगाओ और परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करो कि, हे दयामय जगदीश ! हमारा मन श्रेष्ठ मङ्गलमय सङ्कल्प करने वाला और आप प्रभुपरमपिता परमात्मा की प्राप्ति की इच्छा करने वाला हो ॥३६॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्। येन यज्ञस्तायते सप्तहोता, तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥३७॥ ३४।४॥

पदार्थः—(येन अमृतेन) जिस अविनाशी आत्मा के साथ युक्त होने वाले मन से (भूतम्)

व्यतीत हुआ (भुवनम् वर्त्तमान् काल सम्बन्धी और (भविष्त्) आगे होने वाला (सर्वम् इदम्) यह सब त्रिकालस्थ वस्तुमात्र (परिगृहीतम्) ग्रहण किया जाता, अर्थात् जाना जाता है। (येन) जिससे (सप्तहोता) सात मनुष्य होता जिस यज्ञ में अथवा पांच प्राण छटा जीवात्मा और अव्यक्त सातवां ये सात जिस में लेने देने वाले हों, वह (यज्ञः) अग्निष्टोमादि वा विज्ञान-रूप व्यवहार (तायते) विस्तृत किया जाता है (तत् मे मनः) वह योगयुक्त मेरा चित्त (शिव-सङ्कल्पम् अस्तु) परमात्मा और मोक्ष विषयक सङ्कल्प करने वाला हो।

भावार्थ:—हे मनुष्यो! जो मन योगाभ्यास के साधनों से सिद्ध हुआ; भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान् इन तीनों कालों का ज्ञाता, सब सृष्टि का जानने वाला, कर्म, उपासना और ज्ञान का साधक है, ऐसे मन को कल्याण में ही लगाना चाहिये ॥१७॥

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता
रथनाभाविवाराः । यस्मिꣳश्चित्तꣳसर्वमोतं
प्रजानां तन्मे मनः शिवसंङ्कल्पमस्तु ॥३८॥
३४।५॥

पदार्थः—( रथनाभौ अराः इव ) रथ के चक्र की नाभि में जैसे अरे लगे रहते हैं, इसी प्रकार ( यस्मिन् ) जिस मन में ( ऋचः ) ऋग्वेद, ( साम ) सामवेद, ( यजूंषि ) यजुर्वेद, ( प्रतिष्ठिताः ) सब ओर से स्थित हैं अर्थात् चार वेदों के मन्त्र विद्वान् के मन में संस्कार रूप से स्थित रहते हैं, ( यस्मिन् ) जिस मन में ( प्रजानाम् ) सब प्राणियों के ( सर्वम् चित्तम् ) सब पदार्थों के ज्ञान ( ओतम् ) सूत्र में मणियों के समान ओत प्रोत हैं, अथात् पिरोये हुए हैं ( तत् मे मनः ) वह मेरा मन ( शिवसंकल्पम्

अस्तु ) शुभ वेद विचार और परमात्मा के ध्यानादिकों के सङ्कल्प वाला हो।

भावार्थः—हे जिज्ञासु पुरुषो ! हम सब लोगों को योग्य है कि, जिस मन के स्वस्थ और शुद्ध रहने से, सत्सङ्ग वेद विचार और ईश्वर ध्यानादि हो सकते हैं, अशुद्ध अस्वस्थ मन से नहीं, ऐसे मन की अशुद्ध भावना को हटाकर वेद विचार और ईश्वर ध्यान में लगावें, जिससे हमारा कल्याण हो ॥३८॥

सुषारथिरश्वाँनिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभी-शुभिर्वाजिनं इव । हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंङ्कल्पमस्तु ॥३९॥३४।६॥

पदार्थः—(इव) जिस प्रकार (सुसारथिः) उत्तम सारथि ( अश्वान् ) घोड़ों को चलाता है ( इव ) इस प्रकार ( यत् ) जो मन ( मनुष्यान् ) मनुष्यों के इन्द्रिय रूपी ( वाजिनः ) वेगवान्

घोड़ों को ( अभीशुभिः ) लगामों द्वारा (नेनीयते ) अनेक मार्गों पर ले जाता है, मन भी इन्द्रियों को अनेक प्रकार की प्रवृत्तिरूपी लगामों द्वारा मनुष्यों को अपने वश में कर के अनेक प्रकार के शुभ अशुभ मार्गों में लेजाता है, ( हृत्प्रतिष्ठम् ) जो मन हृदय म स्थित हुआ ( अजिरम् ) अजर बूढ़ा नहीं होता ( जविष्ठम् ) बड़ा वेगवान् है। ( तत् मे मनः ) वह मेरा मन ( शिवसङ्कल्पम् अस्तु ) उत्तम कल्याण कारक सङ्कल्प वाला हो।

भावार्थः—रथ का सारथी जैसे घोड़ों को चलाता है, ऐसे ही यह मन इन्द्रियों का संचालक है। इस मन में सदा शुभ संकल्प होने चाहियें। जैसे उत्तम सारथी, घोड़ों को लगाम द्वारा अपने वश में करता हुआ, अभिलषित स्थान को पहुँच जाता है। ऐसे ही मन आदि इन्द्रियों को अपने वश में करता हुआ मुमुक्षु पुरुष, मुक्तिरूपी अभि-

लषित धाम को पहुँच जाता है। मन भी बड़ा ही बलवान् बूढ़ा न होने वाला है, इसको अपने वश में करने के लिये मुमुक्षु पुरुष को बड़ा यत्न करना चाहिये ॥३६॥

आ ब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्। दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठा. सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु। फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्। योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥४०॥
२२।२२॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मन्) महाशक्ति वाले

ब्रह्मन् परमात्मन् ! हमारे ( राष्ट्रे ) देश में (ब्रह्म-वर्चसी ) वेद और परमेश्वर का ज्ञाता तेजस्वी सच्चा ( ब्राह्मणः ) ब्राह्मण ( आजायताम् ) सब ओर हो, ( शूरः ) शूरवीर ( इषव्यः ) बाण-विद्या में चतुर ( अतिव्याधी ) दुष्टों को अति वेग से दबा देने वाला ( महारथः ) महारथी राजपुत्र क्षत्रिय वर्ग ( आजायताम् ) हो। ( दोग्ध्री धेनुः ) बहुत दुग्ध देने वाली गौएँ (अनड्वान वोढा) बैल भार उठाने वाले (आशुः सप्तिः ) शीघ्र चलने वाले घोड़े आदि हों (योषा पुरन्धिः) स्त्री पति पुत्र वाली हो। (अस्य यजमानस्य ) इस यजमान के राष्ट्र में ( सभेयः युवा ) सभा में उत्तम वक्ता जवान, और ( जिष्णुः ) जयशील ( रथेष्ठाः ) रथ पर स्थित ( वीरः ) वीर पुरुष ( जायताम् ) होवे। (नि-कामे निकामे ) अपेक्षित समय पर ( नः ) हमारे देश में ( पर्जन्यः वर्षतु ) मेघ बरसे ( नः

ओषधयः) हमारे अन्न आदि ( फलवत्यः पच्य-न्ताम् ) फल वाले होकर पकें तथा ( नः योग क्षेमः ) जो धनादि पहले हमें अप्राप्त है वह प्राप्त हो और जो प्राप्त है उसका संरक्षण (कल्प-ताम्) भली प्रकार हो।

भावार्थः—परमात्मन्! हमारे देश में ब्राह्मण उच्च कोटि के हों। हमारे देश में वीर क्षत्रिय उत्पन्न हों। गौ घोड़े बैल हमारे देश में उत्तम हों। समय पर वर्षा की, तथा परिपक्व अन्न की प्राप्ति की आवश्यकता को पूर्ण करते हुए आप हमारे योग क्षेम को भली प्रकार सिद्ध करें ॥४०॥

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा॥
॥४१॥१६।३६॥

पदार्थः—( मा ) मुझे ( देवजनाः ) परमेश्वर के प्यारे विद्वान् महात्मा सन्तजन जो देव

कहलाने योग्य हैं पवित्र करें। ( मनसा धियः ) सोच विचार मे किये कर्म ( पुनन्तु ) पवित्र करें। ( विश्वा ) सब ( भूतानि ) प्राणिगण और पृथिवी जलादिभूत (पुनन्तु) पवित्र करें। ( जातवेदः ) वेदों को. संसार में प्रकट करने वाला अन्तर्यामी प्रभु ( मा ) मुझे ( पुनीहि ) पवित्र करे।

भावार्थः—हे पतित पावन भगवन्! आप की कृपा से आप के प्यारे महात्मा सन्तजन, हमें उपदेश देकर पवित्र करें। हमारे विचार पूर्वक किये कर्म भी, हमें पवित्र करें। भगवन्! प्रकृति और इसके कार्य जो चर अचर भूत हैं, ये सब आपके अधीन हैं, आपकी कृपा से हमें पवित्र होने में ये अनुकूल हों। आपने हमें सांसारिक और परमार्थिक सुख देने के लिये, चार वेद प्रकट किये हैं, आप कृपा करें कि, उन वेदों का स्वाध्याय करते हुए हम सब आपके पुत्र अपने लोक और पर-

लोक को सुधारें । यह तब ही हो सकता है, जब आप हमको पवित्र करें । मलिन हृदय से तो, न आपकी भक्ति हो सकती है और न ही वेदों का स्वाध्याय, इसी लिये हमरी वारंवार ऐसी प्रार्थना है कि, "जातवेदः पुनीहि मा" ॥४१॥

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च ।
मां पुनीहि विश्वतः ॥४२॥ १६।४३॥

पदार्थः—हे (सवितः) सब के जनक ! (देव) प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (पवित्रेण) शुद्ध आचरण और ज्ञान तथा (सवेन च) उत्तम ऐश्वर्य इन (उभाभ्याम्) दोनों से (माम्) मुझ को (विश्वतः) सब प्रकार से (पुनीहि) पवित्र करें ।

भावार्थः—हे सकल सृष्टिकर्ता सकल सुख-प्रदाता परमात्मन् ! आप कृपा करके हमें अपना यथार्थ ज्ञान प्रदान करें । तथा शुद्धाचरण वाला

बना कर ऐश्वर्य भी देवें, क्योंकि शुद्ध आचरण और आपके ज्ञान के विना सब ऐश्वर्य पुरुष को नरक में ले जाता है। इस लिये हमारी ऐसी प्रार्थना है कि, हमें शुद्धाचरण वाला और ब्रह्मज्ञानी बना कर, उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करते हुए, पवित्र बनाएँ, जिस से हम लोक और परलोक में सुखी होवें।४२।

**अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः।**
**आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥४३॥** १९।३८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप सर्वत्र व्यापक पूज्य परमात्मन्! (आयूंषि) जीवनों को (पवसे) पवित्र करते (नः ऊर्जम्) हमारे लिये बल (च) और (इषम्) अभिलषित फल अन्नादि ऐश्वर्य (आसुव) प्रदान करें। (आरे) समीप और दूर के (दुच्छुनाम्) दुष्ट पुरुषों को (बाधस्व) पीड़ित और नष्ट करें।

भावार्थः—हे अन्तर्यामी कृपासिन्धो भगवन्!

हम पर आप कृपा करें, हमारा जीवन पवित्र हो, आपके यथार्थज्ञान और आपकी प्रेम भक्ति के रंग से रंगा हुआ हो। हमारे शरीर नीरोग, मन उज्ज्वल और आत्मा उन्नत हो। हमारे आर्य भ्राता, वेदों के विद्वान्, पवित्र जीवन वाले, धार्मिक, आपके अनन्य भक्त और श्रद्धा भक्तियुक्त हों। भगवन्! अपने भक्तों के विरोधी दुःख दायकों के हृदयों को भी पवित्र कर, जिससे वे लोग भी, किसी की हानि न करते हुए कल्याण के भागी बन जावें ॥४३॥

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रꣳहवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना। प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रꣳहुवेम ॥४४॥३४।३४॥

पदार्थः—(प्रातः) प्रभात वेला में (अग्निम्) स्वप्रकाशस्वरूप (प्रातः) (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य-

युक्त प्रभु की (हवामहे) हम स्तुति प्रार्थना करते हैं। (प्रात) (मित्र वरुणा) प्राण उदान के समान प्रिय और सर्व शक्तिमान् (प्रातः) (अश्विना) सूर्य चन्द्र के रचयिता परमात्मा की (प्रातःभगम्) भजनीय सेवनीय ऐश्वर्ययुक्त (पूषणम् पुष्टि कर्ता (ब्रह्मणः पतिम्) अपने उपासक, वेद और ब्रह्माण्ड के पालन करने हारे (प्रातः सोमम्) अन्तर्यामी प्रेरक (उत) और (रुद्रम्) पापियों को रुलाने हारे और भक्तों के सर्व रोग नाशक जगदीश्वर की (हुवेम) हम लोग प्रातःकाल में स्तुति प्रार्थना करते हैं।

भावार्थः—हे ज्ञानस्वरूप ज्ञानप्रद परमात्मन्! हे सकल ऐश्वर्य के स्वामी ऐश्वर्य के दाता प्रभो! हे परमप्यारे सूर्य, चन्द्र आदि सब जगतों के रचयिता अपने भक्तों और ब्रह्माण्ड के पालन करने वाले जगदीश! सब मनुष्यों के आप ही

सेवनीय हो। आप ही सब भक्तों को शुभ कर्मों में लगाने वाले और उनके रोग शोकादि कष्टों के दूर करने वाले अन्तर्यामी हो। हम आपकी ही स्तुति प्रार्थना उपासना करते हैं अन्य की नहीं ॥४४॥

प्रातर्जितं भगमुग्रꣳहुवेम, वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता। आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥४५॥

३४।३५॥

पदार्थः—( प्रातः ) प्रातः समय में (जितम्) जयशील ( भगम् ) ऐश्वर्य के दाता ( उग्रम् ) बड़े तेजस्वी ( अदितेः ) अन्तरिक्ष के ( पुत्रम् ) सूर्य के उत्पत्ति कर्त्ता ( यः ) जो सूर्य चन्द्रादि लोकों का ( विधर्ता ) विशेष करके धारण करने द्वारा ( आध्रः ) सब ओर से धारण कर्ता (यम्

चित् ) जिस किसी का भी (मन्यमानः) जानने हारा ( तुरः चित् ) दुष्टों को भी दण्डदाता ( राजा ) सबका प्रकाशक और स्वामी है ( यम् भगम् ) जिस भजनीय स्वरूप को ( चित् ) भी ( भक्षीति ) इस प्रकार सेवन करता हूं और इसी प्रकार भगवान् परमेश्वर सबको ( आह ) उपदेश करते हैं कि तुम, जो मैं सूर्यादिलोक लोकान्तरों का बनाने और धारण करने हारा हूं, उस मेरी उपासना किया करो और मेरी आज्ञा में रहो, इससे ( वयम् हुवेम ) हम लोग उस की स्तुति करते हैं।

भावार्थः—हे सर्वशक्तिमन् ! महातेजस्विन् जगदीश ! आपकी महिमा को कौन जान सकता है। आपने सूर्य, चन्द्र, बुध, बृहस्पति, मंगल, शुक्रादि लोकों को बनाया और इनमें अनन्त प्राणी बसाये हैं। उन सबको आपने ही धारण किया और इनमें बसने वाले प्राणियों के गुण कर्म स्व-

भावों को आपही जानते और उनको सुख दुःखादि देते हैं। ऐसे महासमर्थ आप प्रभु को, प्रातःकाल में हम स्मरण करते हैं। आप अपने स्मरण का प्रकार भी हमको मन्त्रों द्वारा बता रहे हैं, यह आपकी अपार कृपा है, जिसको हम कभी भूल नहीं सकते ॥४५॥

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः। भग प्रणो जनय गोभिरश्वैर्भग प्रनृभिर्नृवन्तः स्याम ॥४६॥३४।३६॥

पदार्थः—हे (भग) भजनीय प्रभो! (प्रणेतः) सबके उत्पादक सत्कामों में प्रेरक (भग) ऐश्वर्य प्रद (सत्य राधः) धन के दाता (भग) सत्याचरणी पुरुषों को ऐश्वर्यप्रद आप परमेश्वर (नः) हमको (इमाम्) इस (धियम्) प्रज्ञा को (ददत्) दीजिये, उसके दान से हमारी

( उद्व ) रक्षा कीजिये। हे ( भग ) भगवन्! ( गोभिःअश्वैः ) गाय घोड़े आदि उपकारक पशुओं से हमारी समृद्धि को ( नः ) हमारे लिये ( प्रजनय ) प्रकट कीजिए ( भग ) भगवन्! आपकी कृपा से हम लोग ( नृभिः ) उत्तम पुरुषों से ( नृवन्तः ) वीर मनुष्य युक्त ( प्रस्याम ) अच्छे प्रकार होवें।

भावार्थः—हे भजनीय प्रभो! आप सारे संसार को उत्पन्न करने वाले और सदाचारी अपने सच्चे भक्तों को सच्चा धन ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। जिस बुद्धि से हम पर आप प्रसन्न होवें, ऐसी बुद्धि, हमें दे कर हमारी रक्षा करें। सारे सुखों की जननी उत्तम बुद्धि ही है। इसलिये हम आप से ऐसी प्रज्ञा मेधा उज्ज्वल बुद्धि की प्रार्थना करते हैं। भगवन्! गौ घोड़े आदि हमें देकर हमारी समृद्धि को बढ़ावें और अच्छे अच्छे विद्वान् और वीर पुरुषों से हमें संयुक्त करें, जिससे हमें किसी

प्रकार का कभी कष्ट न हो ॥४६॥

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् । उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानांᳫं सुमतौ स्याम ॥४७॥३४।३७॥

पदार्थ.—हे भगवन् ! आपकी कृपा (उत) और अपने पुरुपार्थ से ( इदानीम् ) इसी समय ( प्रपित्वे ) पदार्थों की प्राप्ति में ( उत ) और ( अह्नाम् मध्ये ) इन दिनों के मध्य में (भगवन्तः) ऐश्वर्य युक्त और शक्तिमान् (स्याम) होवें ( उत ) और ( मघवन् ) हे परम पूजनीय असंख्य धन दाता प्रभो ! ( सूर्यस्य उदिता ) सूर्य के उदय काल में ( देवानाम् ) पूर्ण विद्वानों की (सुमतौ) उत्तम बुद्धि वा सम्मति में सकल ऐश्वर्य युक्त ( स्याम) हम होंवें ।

भावार्थः—हे परम पूज्य असंख्य धनादि

पदार्थदाता प्रभो! आप हम पर कृपा करें, कि हम, आपकी कृपा और अपने पुरुषार्थ से शीघ्र ऐश्वर्ययुक्त और शक्तिमान् होवें। भगवन्! आपकी पूर्ण कृपा से ही पूर्ण विद्वान् महात्मा सन्त जन मिलते हैं। उनकी कृपा और सदुपदेशों से, हम अपना लोक और परलोक सुधारते हुए, सुखी रह सकते हैं। किसी उत्तम पुरुष का यह सत्य वचन है कि "बिन हरि कृपा मिले नहीं सन्ता" ॥४७॥

भग एव भगवाँ२॥ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम। तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह ॥४८॥

३४।३८॥

पदार्थः—हे (देवाः) विद्वान् महापुरुषो! (भगः) सबके भजनीय सेवनीय परमेश्वर (एव) ही (भगवान् अस्तु) हमारा सब का

पूज्य इष्ट देव हो। (तेन वयम्) उस देव की कृपा से हम सब (भगवन्तः स्याम) भाग्यवान् हों। (तम् त्वा) उस आप भगवान् को हे (भग) भगवन्! (सर्व इत्) समस्त जन भी (जोहवीति) बार बार स्मरण करता है। हे (भग) भगवन्! (इह) इस जगत् में (सः नः) वह आप हमारे (पुरः एता) अग्रगामी अर्थात् हम सब के नायक, लीडर व नेता (भव) होवें।

भावार्थः—हे महात्मा विद्वान् महापुरुषो! हम सब का पूजनीय इष्ट देव, सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ही होना चाहिये, न कि जड़ पदार्थ वा कोई जल, स्थल, वा जन्मता मरता कोई मनुष्य, या पशु पक्षी। आप महापुरुष विद्वानों की कृपा से साधारण पुरुष भी प्रभु का भक्त बन कर भाग्यशाली बन जाता है और अनेक पुरुषों का कल्याण करता है। हे परमेश्वर! आपकी महती

कृपा से, पुरुष विद्वान् और आपका सच्चा भक्त बन कर, अनेक पुरुषों को आपके भक्त बनाकर, संसार से उनका उद्धारकर्ता बन जाता है। यह सब आपकी कृपा का ही प्रताप है ॥४८॥

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्विश्लोक एतु पथ्येव सूरेः। शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥४९॥ ११।५॥

पदार्थः—ईश्वर की उपासना का उपदेष्टा गुरु और उस का ग्रहण करने वाला शिष्य, इन दोनों के प्रति परमेश्वर का उपदेश है कि (पूर्व्यम् ब्रह्म) मैं सनातन ब्रह्म (वाम्) आप गुरु शिष्य दोनों को (युजे) उपासना में जोड़ता हूं, (नमोभिः) नमस्कारों से (विश्लोक) विविध कीर्ति (एतु) प्राप्त हो, (इव) जैसे

( सूरेः ) विद्वान् पुरुष को ( पथ्या ) मार्ग प्राप्त होता है. ( ये विश्वे अमृतस्य पुत्राः ) जो सब आप लोग अमर, जो मैं हूँ मुझ उसके पुत्र हो, ( शृण्वन्तु ) सुनो ( दिव्यानि धामानि ) दिव्य लोकों अर्थात मोक्ष सुखों को ( आतस्थुः ) अधि-तिष्ठन्तु=प्राप्त होवो ।

भावार्थः—परम कृपालु परमात्मा, अपने भक्तों पर कृपा करते हुए कहते हैं—हे अमृत के पुत्रो मेरे वचन को बड़े प्रेम से सुनो । आप लोग मुझ को वारंवार नमस्कार करते और मेरा ही मन में ध्यान धरते हो, इस लोक में कीर्ति और शान्ति को प्राप्त होओ । मोक्षके अनन्त दिव्य सुख भी, आप लोगों के लिये ही नियत हैं, उनको प्राप्त होकर सदा आनन्द में रहो ॥४१॥

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।

गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥

॥५०॥१२।७६॥

पदार्थः—(अश्वत्थे) कलतक रहेगा वा नहीं ऐसे अनित्य संसार में (वः) आप जीव लोगों की (निषदनम्) स्थिति की (पर्णे) पत्ते के तुल्य चंचल जीवन वाले शरीर में (वः) तुम्हारा (निवसतिः) निवास (कृता) किया, (यत्) जिस (पुरुषम्) सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा को (किल) ही (सनवथ) सेवन करो तो (गोभाजः इत्) वेद वाणी, इन्द्रिय, किरण आदिका सेवन करने वाले ही (किल असथ) निश्चय से होवो।

भावार्थः—दयामय परमात्मा अपने प्यारे पुत्रों को उपदेश देते हैं—हे पुत्रो! आप लोग विचार कर देखो, अति चञ्चल नश्वर, संसार में आप लोगों की मैंने स्थिति की है उसमें भी पत्ते

के तुल्य शीघ्र गिरजाने वाले शरीर में मैंने आप लोगों का निवास कराया है। ऐसे नश्वर संसार और क्षण भंगुर शरीर में रहते हुए भी आप लोग संसार और शरीर को नित्य अविनाशी जान कर मुझ जगत्पति प्रभु को भुला देते हैं। संसार में ऐसे फंसे कि, न आपको वेद वाणी जो मेरी प्यारी वाणी है उसमें रुचि रही और न आप को वेद वेत्ता महात्माओं के सत्संग में ही श्रद्धा रही। इसलिये अब भी आपको मेरा उपदेश है, आप लोग सत्संग करें। वेद वाणी पढ़ने से ही प्रेम से भक्ति करते, लोक परलोक में कल्याण के भागी बनें ॥५०॥

देव॑ सवितः॒ प्रसु॑व य॒ज्ञं प्रसु॑व य॒ज्ञप॑तिं॒ भगा॑य।
दि॒व्यो ग॑न्ध॒र्वः के॑त॒पूः केत॑ नः पुनातु वा॒च-
स्पतिर्वाचं॑ नः स्वदतु ॥५१॥ ६।१॥

पदार्थः—( देव ) हे प्रकाशमय (सवितः) सब जगत् के उत्पादक सबके प्रेरक परमात्मन्! ( यज्ञम् ) यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों को ( प्रसुव ) अच्छे प्रकार चलाओ। ( यज्ञपतिम् ) यज्ञ के रक्षक यजमान को ( भगाय ) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए ( प्रसुव ) आगे बढ़ाओ ( दिव्यः ) विलक्षण अलौकिक आश्चर्यस्वरूप ( गन्धर्वः ) वेदविद्या के आधार ( केतपूः ) बुद्धि के पवित्र करने वाले परमेश्वर ( नः केतम् ) हमारी बुद्धि को ( पुनातु ) शुद्ध करें ( वाचः पतिः ) वेदविद्या और वेदवाणी के पालक स्वामी प्रभु ( नः वाचम् ) हमारी विद्या और वाणी को ( स्वदतु ) मधुर करें।

भावार्थः—हे सदा प्रकाश स्वरूप, सब जगत् के स्रष्टा जगदीश! आप कृपा करके यज्ञादि उत्तम कर्मों को सारे संसार में फैला दो। यज्ञादि कर्मों के करने वालों के ऐश्वर्य को बढ़ाओ, जिसको देख

कर यज्ञादि कर्मों के करने की रुचि सब के मन में उत्पन्न हो। आप आश्चर्यस्वरूप, अपने प्रेमी जनों की बुद्धियों को शुद्ध करने वाले हैं, कृपया हमारी बुद्धि को भी शुद्ध करें। आप वेदों के और वाणी के पालक हैं, हमारी वाणी को सत्य भाषण करने वाली और मधुर बोलने वाली बनावें॥५१॥

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः। वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः॥५२॥ ॥३।२५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) स्वप्रकाशस्वरूप जगदीश! (त्वम नः) आप हमारे (अन्तमः) अत्यन्त समीप स्थित हैं, (उत वरूथ्यः) और वरणीय और सेवनीय आप ही हैं। (त्राता) आप हमारे रक्षक (शिवः भव) सुखदायक होओ (वसुः) सब में वास करने वाले (अग्निः) सबके अग्रणीय नेता (वसुश्रवाः) धन ऐश्वर्य

के स्वामी होने से महायशस्वी (अच्छा नक्षि) हमें भली प्रकार प्राप्त होओ (द्युमत्तमम्) हमें उज्ज्वल (रयिम् दाः) धन विभूति प्रदान करें।

भावार्थः—हे परमात्मन्! आप सर्वत्र व्यापक होने से सबके अति निकट हुए, सबके गुण, कर्म, स्वभावों को जान रहे हो। किसी की कोई बात भी आप से छिपी नहीं। इस लिये हम पर दया करो कि हम आपको सर्वान्तर्यामी जानकर, सब दुर्गुण दुर्व्यसन और सब प्रकार के पापों से रहित हुए, आप के सच्चे प्रेमी भक्त बनें। भगवन्! आप ही भजनीय, सेवनीय, सब के नेता, सब में वास करने वाले, सारी विभूति के स्वामी, अपने प्यारे पुत्रों को उत्तम से उत्तम धन के दाता और उनके कल्याण के कर्ता हो। भगवन् हमें भी आप उत्तम से उत्तम धन प्रदान करें और हमें अच्छे प्रकार से प्राप्त होकर, लोक परलोक में हमारा कल्याण करें। हम आपकी ही शरण में आये हैं ॥४२॥

आगन्म विश्ववेदसमस्मभ्यं वसुवित्तमम् ।
अग्ने सम्राडभि द्युम्नमभि सह आयच्छस्व ॥
॥५३॥२।२८॥

पदार्थः—( विश्ववेदसम् ) सब ज्ञान और धनों के स्वामी ( अस्मभ्यम् ) हमारे लिये ( वसुवित्तमम ) सब से अधिक धन ऐश्वर्य को प्राप्त कराने वाले ( आ अगन्म ) प्राप्त हों । हे ( अग्ने ) हमारे सब के नेता आप (सम्राट्) सब से अधिक प्रकाशमान् ( द्युम्नम् ) धन और अन्न को ( सहः ) समस्त बल को ( अभि अभि ) सब ओर से ( आयच्छस्व ) हमें प्रदान कर ।

भावार्थः—हे सब से अधिक ज्ञान और बल, धन के स्वामी परमात्मन् ! हम आपकी शरण को प्राप्त होते हैं, आप कृपा करके सब को ज्ञान, धन

और बल प्रदान करो। भगवन्! आप सच्चे सम्राट् हो, आप जैसा समर्थ, न्यायकारी, महाज्ञानी, महाबली दूसरा कौन हो सकता है। हम आप महाराजाधिराज की प्रजा हैं, हमें जो कुछ चाहिये आप से ही मांगेंगे, आप जैसा दयालु दाता न कोई हुआ, न है और न कोई होगा। आपने अनन्त पदार्थ हमें दिये, दे रहे हो और देते रहोगे, आपके अनादि ऐश्वर्य हमारे लिये ही तो हैं, क्योंकि आप तो सदा आनन्दस्वरूप हो आपको धन की आवश्यकता ही नहीं। जितने लोक लोकान्तर आपने बनाये हैं, यह सब आपने अपने प्यारे पुत्रों के लिये ही बनाये हैं अपने लिये नहीं ॥५३॥

पुन॑र्नः पि॒तरो॒ मनो॑ दर्दातु॒ दैव्यो॒ जनः॑ ।
जी॒वं व्रात॑ᳩ सचेमहि ॥५४॥ ३।५५॥

पदार्थः—हे (पितरः) पालन करने वाले पूज्य महा पुरुष! (दैव्यः जनः) देव विद्वानों

में सुशिक्षित परमात्मा का अनन्य भक्त और योगी राज महात्मा पुरुष ( नः ) हमें ( पुनः ) वार वार ( मनः ददातु ) ज्ञान का प्रदान करे हम लोग ( जीवम् ) जीवन और ( व्रतम् ) उत्तम कर्मों को ( सचेमहि ) प्राप्त हों ।

भावार्थः—हे हमारे पूज्य पालन पोषण करने वाले महापुरुषो ! परमात्मा की दया और आप महापुरुषों के आशीर्वाद से हमें ऐसा योगीराज वेदवेत्ता विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ महात्मा पुरुष, संसार के कामी क्रोधी पुरुषों से भिन्न, शान्तात्मा महापुरुष प्राप्त हो, जिसके यथार्थ उपदेशों से, हम अपने जीवन और आचरणों को सुधारते हुए, परमेश्वर के अनन्य भक्त बन कर अपने जन्म को सफल करें ॥५४॥

वयꣳसोम व्रते तव मनस्तनूषु विभ्रतः ।
प्रजावन्तः सचेमहि ॥५५॥ ३।५३॥

पदार्थः— हे (सोम) सब के प्रेरक परमात्मन्! (वयम्) हम (तव व्रते) आपके बनाये नियम के अनुसार चल कर और (तनूषु) अपने शरीर और आत्माओं में (तव) आप के (मनः) ज्ञान को (बिभ्रतः) धारण करते हुए (प्रजावन्तः) पुत्र पौत्रादि से युक्त होकर (सचेमहि) सुख को प्राप्त करें।

भावार्थः— हे सोम सत्कर्मों में प्रेरक जगदीश्वर! आपके बनाये वैदिक नियमों के अनुसार अपना जीवन बनाकर, अपने आत्मा में आपके ज्ञान को धारण करते हुए, अपने सम्बन्धिवर्ग सहित इस लोक और परलोक में आपकी कृपा से हम सदा सुखी रहें ॥५५॥

आ न॑ एतु मन॑: पुन॒: क्रत्वे॒ दक्षा॑य जी॒वसे॑ ।
ज्योक् च॒ सूर्यं॑ दृ॒शे ॥५६॥ ३।५४॥

पदार्थः—(नः) हमें (पुनः) बार बार

(क्रत्वे) उत्तम विद्या और श्रेष्ठ कर्म (दक्षाय) बल के लिये (ज्योक् च) चिर काल तक (जीवसे) जीवन धारण करने के लिए और (सूर्यम्) सब चराचर के आत्मा, सब के प्रेरक सूर्य के समान ज्योतिर्मय परमेश्वर के (दृशे) ज्ञान के लिये (मनः) मनन वा ज्ञान शक्ति (आ एतु) प्राप्त हो।

भावार्थः—हे ज्ञानमय परमात्मन्! आपकी कृपा से, हम उत्तम वैदिक कर्म, वेद विद्या और उत्तम बल प्राप्ति पूर्वक, बहुत काल तक जीवन धारण करते हुए, आप ज्योतिर्मय परमात्मा के यथार्थ ज्ञान को प्राप्त हों। भगवन्! आपके यथार्थ स्वरूप को जान कर, आपकी वेद विद्या का ही सारे संसार में प्रचार करें, ऐसी हमारी प्रार्थना को कृपा कर स्वीकार करें ॥२६॥

ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः।

तेषांᳪं सहस्रयोजनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥

॥५७॥१६।५६॥

पदार्थः—( ये ) जो ( भूतानाम ) प्राणि-मात्र के (अधिपतयः) अधिपति, पालक, रक्षक, स्वामी ( विशिखासः ) शिखा रहित संन्यासी और ( कपर्दिनः ) जटाधरी ब्रह्मचारी लोग हैं, ( तेषाम् ) उनके हितार्थ ( सहस्र योजने ) हज़ार योजन के देश में हम लोग सर्वदा भ्रमण करते हैं और (धन्वानि ) अविद्यादि दोषों के निवारणार्थ विद्यादि शस्त्रों का वे लोग ( अवतन्मसि ) विस्तार करते हैं ।

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि, जो वेदों के विद्वान्, सबके शुभ चिन्तक, परमात्मा के सच्चे प्रेमी, महात्मा सुण्डित संन्यासी और ऐसे ही जटिल ब्रह्मचारी लोग हैं, उनकी प्रेम पूर्वक सेवा करें और उनसे ही वेदों के अर्थ और भाव

जान कर, परमात्मा के सच्चे प्रेमी भक्त बनें। उन महानुभाव महात्माओं की सेवा और उनसे वेद उपदेश लेने के लिये कहीं दूर भी जाना पड़े तब भी कष्ट सहन करके उनके पास जाकर, उनकी सेवा करते हुए उपदेश धारण कर अपने जन्म को सफल करें ॥५७॥

कया त्वं न ऊत्याऽभिप्रमन्दसे वृषन् ।
कया स्तोतृभ्य आभर ॥५८॥ ३६।७॥

पदार्थः—हे (वृषन्) सब सुख और ऐश्वर्य के वर्षक परमात्मन् (त्वम्) आप (कया) किस (ऊत्या) रक्षण आदि क्रिया से (नः) हम को (अभिप्रमन्दसे) सब ओर से आनन्दित करते और (कया) किस रीति से (स्तोतृभ्यः) आपकी प्रशंसा करने वाले मनुष्यों के लिये सुख को (आभर) सब प्रकार से प्राप्त कराते हो।

भावार्थः—हे परम दयालु परमात्मन्! जिस बुद्धि और युक्ति से आप धर्मात्मा ज्ञानी पुरुषों को, सुखी करते और उनकी सब ओर से रक्षा करते हैं। उस बुद्धि और युक्ति को हम को भी जताइये ॥४८॥

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवताऽऽदित्या देवता मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता ॥४६॥

१४।२०॥

पदार्थः—( अग्निः ) यह प्रसिद्ध अग्नि ( देवता ) दिव्य गुण वाला ( वातः ) पवन ( देवता ) शुद्ध गुण युक्त (सूर्यः) सूर्य (देवता) अच्छे गुणों वाला ( चन्द्रमाः देवता ) चन्द्रमा शुद्ध गुण युक्त ( वसवः ) अग्नि आदि आठ

वसु ( देवता ) दिव्य गुण वाले ( रुद्राः ) प्राण आदि ११ रुद्र ( देवता ) शुद्ध गुणों वाले ( आदित्याः ) बारह महीने ( देवता ) शुद्ध ( मरुतः ) मनन कर्ता विद्वान् ऋत्विग् लोग ( देवता ) दिव्य गुण वाले ( विश्वे देवाः ) अच्छे गुण वाले सब विद्वान् मनुष्य, वा दिव्य पदार्थ ( देवता ) देव संज्ञा वाले हैं (बृहस्पतिः) बड़े ब्रह्मण्ड वा वेद वाणी का रक्षक परमात्मा ( देवता ) सब दिव्य गुण युक्त देवों का भी देव है ( इन्द्रः ) बिजुली वा उत्तम धन (देवता) दिव्य गुण युक्त ( वरुणः देवता ) जल वा श्रेष्ठ गुणों वाला पदार्थ उत्तम है।

भावार्थः—इस संसार में जो अच्छे गुणों वाले पदार्थ हैं, वे दिव्य गुण कर्म और स्वभाव वाले होने से देवता कहाते हैं, और जो सब देवों का देव होने से महादेव, सबका धारक, रचक और रक्षक सबकी व्यवस्था और प्रलय करने हारा

सर्वशक्तिमान् दयालु न्यायकारी उत्पत्ति धर्म से रहित है, उस सबके अधिष्ठाता परमात्मा को सब मनुष्य जानें, इसी की ही सबको प्रेम से उपासना करनी चाहिये ॥२१॥

चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य । त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां २॥ आविवेश ॥

॥६०॥१७ ६१॥

पदार्थः—( चत्वारि शृङ्गा ) चार दिशाएँ सींगवत् ( त्रयः )( अस्य ) तीन इसके (पादः) चरण हैं, तीन काल अथवा तीन भुवन चरण के समान हैं । (द्वे शीर्षे )पृथिवी और द्यु लोक दोनों शिर हैं । ( अस्य सप्त हस्तासः ) महत् अंहकार और पांच भूत ये सात इस भगवान् के हाथ हैं । ( त्रिधा बद्धः ) सत् चित् आनन्द

इन तीन स्वरूपों में बद्ध है वह ( वृषभः ) सब सुखों की वर्षा करने वाला और सारे जगत् को उठाने वाला ( रोरवीति ) वेद ज्ञान का उपदेश कर रहा है, वह ( महः देवः ) महादेव ( मर्त्यान् आविवेश ) मरण धर्मा मनुष्यों और विनश्वर सब पदार्थों में भी व्यापक है।

भावार्थः— इस मन्त्रमें अलङ्कार से परमात्मा का कथन है। जैसे कोई ऐसा बैल हो जिसके चार सींग, तीन पांव, दो सिर, सात हाथ, तीन प्रकार से बंधा हुआ बार बार बोलता हो, ऐसे बैल की उपमा से प्रभु के स्वरूप का निरूपण किया है। चारदिशाएँ सींगवत्, तीन काल वा तीन भुवन पादवत्, पृथिवी और द्युलोक दोनों शिरवत्, महत् अहङ्कार पांच भूत ये सात प्रभु के हाथवत् हैं, सत् चित् आनन्द ( इन तीन ) स्वरूप से विराजमान, सब सुखों की वर्षा करने वाला, वेद ज्ञान का सदा उपदेश कर रहा है। वह महा…

देव, मरणधर्मा मनुष्यों और सब नश्वर पदार्थों में व्यापक हो रहा है, ऐसे प्रभु को जानना चाहिये ॥६०॥

आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचं मे पिन्व मनो मे जिन्वात्मानं मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ ॥६१॥ १४।१७॥

पदार्थः—हे दयामय जगदीश्वर ! (मे आयुः पाहि) मेरी आयु की रक्षा करो। (मे प्राणम् पाहि) मेरे प्राण की रक्षा करो। (मे अपानम् पाहि) मेरे अपान की रक्षा करो। (मे व्यानम् पाहि) मेरे व्यान की रक्षा करो। (मे चक्षुः पाहि) मेरे नेत्रों की रक्षा करो। (मे श्रोत्रम् पाहि) मेरे कानों की रक्षा करो। (मे वाचम् पिन्व)

मेरी वाणी को अच्छी शिक्षा से युक्त करो। ( मे मनः जिन्व ) मेरे मन को प्रसन्न करो। ( मे आत्मानम् पाहि ) मेरे चेतन आत्मा की और मेरे इस भौतिक देह की रक्षा करो। ( मे ज्योतिः यच्छ ) मुझे आत्मा की और अपनी यथार्थ ज्ञानरूपी ज्योतिः प्रदान करें।

भावार्थः—परमात्मन्! आप कृपा करके, हमारे आयुः, प्राण, अपान, व्यान, नेत्र, श्रोत्र, वाणी, मन, देह और इस चेतन जीवात्मा की रक्षा करते हुए मुझे यथार्थ ब्रह्मज्ञान प्रदान करें; जिससे हम आपके दिये मनुष्य जन्म को सफल कर सकें। भगवन्! आयुः, प्राण, नेत्र, श्रोत्र, वाणी, मन आदि की रक्षा और इन की नीरोगता के बिना, हमारा जीवन ही दुःखमय हो जायगा, इस लिये आप से इनकी रक्षा और प्रसन्नता की भी हम प्रार्थना करते हैं, कृपा करके इस प्रार्थना को अवश्य स्वीकार करें ॥६१॥

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिꣳ सर्वतः स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥
॥६२॥३१।१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (पुरुषः) पूर्ण परमेश्वर (सहस्रशीर्षा) जिसमें हमारे सब प्राणियों के सहस्र अर्थात् अनन्त शिर (सहस्राक्षः) जिसमें हजारों नेत्र (सहस्रपात्) हजारों पग हैं (स. भूमिम्) वह समग्र भूमि को (सर्वतः) सब प्रकार से (स्पृत्वा) व्याप्त होके (दश अंगुलम्) पांच स्थूल भूत, पांच सूक्ष्म भूत यह दश जिसके अवयव हैं ऐसे सब जगत् को (अति अतिष्ठत्) उल्लांघ कर स्थित होता है अर्थात् सब से पृथक् भी स्थित होता है।

भावार्थः—हे जिज्ञासु पुरुषो ! जिस पूर्ण परमात्मा में, हम मनुष्य आदि सब प्राणियों के,

अनन्त शिर नेत्र पग आदि अवयव हैं, ! जो पृथिवी आदि से उपलक्षित पांच स्थूल और पांच सूक्ष्म भूतों से युक्त जगत् को, अपनी सत्ता से पूर्ण कर जहां जगत् नहीं वहां भी पूर्ण हो रहा है। उस जगत् कर्ता परिपूर्ण जगत्पति परमात्मा, चेतनदेव की उपासना करनी चाहिये। किसी जड़ पदार्थ को परमेश्वर मानना और उस जड़ पदार्थ को ही भोग लगाना, उसी को प्रणाम करना, पंखा वा चमर फेरना महा मूर्खता है। परमेश्वर ने ही सब जगत् के पदार्थों को बनाया, ईश्वर रचित उन पदार्थों में ईश्वर बुद्धि करके, उनको भोग लगाना नमस्कारादि करना, महामूर्खता नहीं तो और क्या है ॥१२॥

पुरुष एवेदꣳसर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥६३॥
३१।२॥

पदार्थः—( पुरुषः एव ) सब जगत् म

पूर्ण व्यापक ईश्वरही ( यत् ) जो ( भूतम् ) उत्पन्न हुआ ( यत् च ) और जो ( भाव्यम् ) भविष्य में उत्पन्न होगा और है ( उत ) और ( यत् ) जो ( अन्नेन ) पृथिवी आदि के सम्बन्ध से ( अति रोहति ) अत्यन्त बढ़ता है, ( इदम् सर्वम् ) इस प्रत्यक्ष परोक्ष रूप समस्त जगत् का और ( अमृतत्वस्य ) अविनाशी मोक्ष सुख वा कारण का भी ( ईशानः ) स्वामी परमात्मा है, वही सब कुछ रचता है।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जब २ इस जगत् की रचना हुई तब २ उस समर्थ प्रभु ने ही इस जगत् को रचा, वही सदा इसका पालन पोषण और धारण करता रहा, अब कर रहा है। आगे भविष्य में भी इसकी रचना पालन पोषण धारण करना आदि काम करता रहेगा। और मुक्ति सुख भी उसी जगन्नियन्ता परमात्मा के अधीन है। वही प्रभु, अपने प्यारे, अपने जीवन को पवित्र वेदा-

नुसारी बनाने वाले ज्ञानी भक्तों को, मुक्ति देकर सदा सुखी रखता है ॥६३॥

एतावा॑नस्य महि॒मातो॒ ज्याया॑ँश्च॒ पूरु॑षः ।
पादो॑ऽस्य॒ विश्वा॑ भूता॒नि॑ त्रिपाद॑स्या॒मृतं॑ दि॒वि ॥६४॥ ३१।३॥

पदार्थः—( एतावान् ) तीन काल में होने वाला जितना संसार है यह सब ( अस्य ) इस जगदीश की ही ( महिमा ) सामर्थ्य का स्वरूप है ( च ) और ( पूरुषः ) सारे जगत् में पूर्ण परमेश्वर ( अतः ) इस जगत् से ( ज्यायान् ) बहुत ही बड़ा है ( विश्वा भूतानि ) प्रकृति से ले कर पृथिवी पर्यन्त सब भूत ( अस्य पादः ) इस भगवान् का एक पाद है इस एक अंश रूप पाद में सारा संसार वर्त्तमान है और ( त्रिपाद् ) तीन अंशों वाला ( अस्य )

इस परमेश्वर का स्वरूप ( दिवि ) प्रकाशस्वरूप अपने आप में ( अमृतम् ) नित्य अविनाशी रूप से वर्तमान् है ।

भावार्थः— यह भूत भौतिक सब संसार इस जगत् पति की महिमा है । उस प्रभु ने ही सारे जगत् को अपनी शक्ति से रचा और वही इसका पालन पोषण कर रहा है । इस जगत् से वह बहुत ही बड़ा है, सारे चराचर जगत् के भूत इस प्रभु के एक अंश में पड़े हैं । उस जगदीश के तीन पाद स्वस्वरूप में वर्तमान हैं । वही अविनाशी प्रकाशस्वरूप और सदा मुक्त स्वरूप हैं । कभी बन्धन में नहीं आता, और अपने भक्तों के सकल बन्धनों को काट कर उनको मुक्ति प्रदान करता है ॥६४॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥
॥६५॥३१।४॥

पदार्थः—पूर्व उक्त ( त्रिपात् पुरुषः ) तीन अंशों वाला पुरुष (ऊर्ध्वः) सब से उत्तम संसार से पृथक् सदा मुक्त स्वरूप ( उत् ऐत् ) उदय को प्राप्त हो रहा है ( अस्य ) इस पुरुष का ( पादः ) एक भाग (इह) इस जगत् में (पुनः) वारंवार उत्पत्ति प्रलय के चक्र में ( अभवत् ) होता है। ( ततः ) इसके अनन्तर ( साशनानशने अभि ) खाने वाले चेतन और न खाने वाले जड़ इन दोनों प्रकार के चराचर लोकों के प्रति ( विष्वङ् ) सब प्रकार से व्याप्त हो कर ( वि अक्रामत् ) विशेष कर उनको उत्पन्न करता है।

भावार्थः—परमात्मा कार्य जगत् से पृथक् तीन अंशों से प्रकाशित हुआ, एक अंश अपने सामर्थ्य से सब जगत् को वारवार उत्पन्न करता है, पश्चात् उस चराचर जगत् में व्याप्त होकर स्थित है। इन मन्त्रों में परमात्मा के जो चार

पाद वर्णन किये हैं, यह एक उपदेश करने का ढंग है। उस निराकार प्रभु के वास्तव में न कोई हस्त है न पाद। पुनः यह कथन कि, वही प्रभु एक अंश से जगत् को उत्पन्न करता है, तीन अंशों से पृथक् रहता है, ऐसे कथन का भाव यह है कि सारे जगत् से प्रभु बहुत बड़ा है, जगत् बहुत ही अल्प है। अनन्त ब्रह्माण्डों को रचता हुआ भी इन से पृथक् है और बहुत बड़ा है ॥६५॥

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥
॥६६॥३१।५॥

पदार्थः—( ततः ) उस सनातन पूर्ण परमात्मा से ( विराट् ) सूर्य चन्द्रादि विविध लोकोंसे प्रकाशमान् ब्रह्माण्ड रूप संसार ( अजायत ) उत्पन्न हुआ। ( विराजः अधि ) विराट्

संसार के भी ऊपर अधिष्ठाता ( पूरुषः ) सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा होता है, ( अथो ) इसके अनन्तर ( सः ) वह पुरुष ( पुरः ) सब से प्रथम विद्यमान् रह कर ( जातः ) इस जगत् में प्रसिद्ध हुआ ( अति अरिच्यत ) जगत् से अतिरिक्त होता है ( पश्चात् भूमिम् ) पीछे पृथिवी और शरीरों को उत्पन्न करता है।

भावार्थः—परमात्मा से ही सब समष्टिरूप जगत् उत्पन्न होता है। वह प्रभु उस जगत् से पृथक् उसमें व्याप्त होकर भी, उसके दोषों से लिप्त न होके, इस सब का अधिष्ठाता है। ऐसे नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव सदा आनन्द स्वरूप जगदीश की ही उपासना करनी चाहिए ॥६६॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥
॥६७॥३१।६॥

पदार्थः—( तस्मात् ) उस ( सर्वहुतः ) सर्वपूज्य ( यज्ञात् ) सब को नेत्र, श्रोत्र, वाक्, हस्त, पाद, प्राणादि सब कुछ देने वाले परमेश्वर से ( पृषद् आज्यम् ) दधि, घृत आदि भोग्य पदार्थ ( सम्भृतम् ) उत्पन्न हुआ। ( ये ) जो ( आरण्यः ) वन के सिंह शूकर आदि ( च ) और ( ग्राम्याः ) ग्राम में होने वाले गाय भैंस आदि हैं ( तान् ) उन ( वायव्यान् ) वायु के समान वेग आदि गुणों वाले सब ( पशून् ) पशुओं को ( चक्रे ) उत्पन्न करता है।

भावार्थः—सब के पूजने योग्य और नेत्र, श्रोत्र, प्राणादि अमूल्य अनन्त पदार्थों के दाता परमात्मा ने, दधि दुग्ध घृत आदि भोज्य पदार्थ हमारे लिये उत्पन्न किये हैं। उसी जगत्पति ने, वन में रहने वाले, सिंह शूकर शृगाल मृगादि भागने वाले पशु बनाये और उसी प्रभु ने नगरों में रहने वाले, गौ, घोड़ा, ऊँट, भैंस, बकरी, भेड़

आदि उपकारी पशु बनाये, जो सदा हमारी सेवा कर रहे हैं। दयामय प्रभो! आपको, जो पुरुष, स्मरण नहीं करते, आपकी वैदिक आज्ञा को न मानकर, संसार के भोगों में फँसे रहते हैं, ऐसे कृतघ्न दुष्ट पापियों को जितने भी दुःख हों थोड़े हैं ॥६७॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥६८॥ ३१।७॥

पदार्थः—(तस्मात्) उस पूर्ण और (यज्ञात्) अत्यन्त पूजनीय (सर्व हुतः) जिसके अर्थ सब लोग समस्त पदार्थों को देते वा समर्पण करते हैं, उसी परमात्मा से (ऋचः) ऋग्वेद (सामानि) सामवेद (जज्ञिरे) उत्पन्न होते (तस्मात्) उस परमात्मा से (छन्दांसि)

अथर्ववेद (जज्ञिरे) उत्पन्न होता (तस्मात्) उस प्रभु से ही (यजुः) यजुर्वेद (अजायत) उत्पन्न होता है।

भावार्थः—उस परम कृपालु जगत्पिता ने, हमारे इस लोक और परलोक के अनन्त सुखों की प्राप्ति के लिये चार वेद बनाये, उन वेदों को पढ़ सुन के हम, इस लोक के सब सुखों को प्राप्त हो सकते हैं। परमात्मा के ज्ञान और उपासना के बिना मुक्ति सुख नहीं प्राप्त हो सकता और उसका ज्ञान और उपासना बिना वेदों के पढ़े सुने नहीं हो सकते। महर्षि लोगों का वचन है "नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्" वेदों को न जानने वाला कोई पुरुष भी उस व्यापक प्रभु को नहीं जान सकता। ऐसे लोक परलोक के सुख प्राप्ति के लिये, हम सब को वेदों का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना आवश्यक है। बिना वेदों के न कोई ईश्वर का ज्ञानी हो सकता है न ही भक्त।

जिसका ज्ञान नहीं हुआ उसकी भक्ति कैसे ? ॥६८॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥६९॥ १।८।

पदार्थः—(अश्वाः) घोड़े (ये के च) और जो कोई गधा ऊँट आदि (उभयादतः) दोनों ओर दान्तों वाले हैं (तस्मात् अजायन्त) उस परमेश्वर से उत्पन्न हुए (तस्मात्) उसी ईश्वर से (गावः) गौएं भी (ह) निश्चय करके (जज्ञिरे) उत्पन्न हुईं (तस्मात्) उससे (अजावयः) बकरी भेड़ (जाताः) उत्पन्न हुई हैं।

भावार्थः—उस जगत् रचयिता परमात्मा ने, अपनी शक्ति से घोड़े, गधे, ऊँट, आदि, नीचे ऊपर दोनों ओर दांतों वाले पशु उत्पन्न किये, एक ओर दांतों वाले गौ, भैंस आदि प्राणी उत्पन्न किये। उसी प्रभुने बकरा, भेड़ आदि प्राणी उत्पन्न किये

हैं। इस वेद मन्त्र में जो घोड़ा, गाय, बकरी और भेड़ इतने थोड़े प्राणियों का वर्णन है, यह संसार के लाखों प्राणियों का उपलक्षण है अर्थात् वह सर्वशक्तिमान् जगन्नियन्ता प्रभु, अपनी अचिन्त्य शक्ति से लाखों प्रकार के प्राणियों के शरीरों को सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न और प्रलय कालमें सब का संहार भी करता है ॥६९॥

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥

॥७०॥३१।९॥

पदार्थः—( ये देवाः ) जो विद्वान् ( च ) और ( साध्याः ) योगाभ्यासादि साधन करते हुए ( ऋषयः ) मन्त्रों के अर्थ जानने वाले ज्ञानी लोग हैं, जिस (अग्रतः ) सृष्टि से पूर्व ( जातम् ) प्रसिद्ध हुए ( यज्ञम् ) सम्यक् पूजने योग्य ( पुरुषम् ) पूर्ण परमात्मा को ( बर्हिषि )

मानस ज्ञान यज्ञ में ( प्र औक्षन् ) सींचते ( अर्थात् ) धारण करते हैं वे ही ( तेन ) उस के उपदेश किये हुए वेद से ( तम् अयजन्त ) उसी का पूजन करते हैं।

भावार्थः—विद्वान् मनुष्यों को, चराचर संसार के कर्ता धर्ता जगदीश्वर का, शम, दम, विवेक, वैराग्य, धारणा, ध्यान आदि साधनों से पवित्र हृदय रूप मन्दिर में, सदा पूजन करना चाहिये। बाहिर के पूजने के ढंग, जो बहिर्मुखता के कारण हैं, उन से सदा विद्वान् पुरुषों को आप बचकर, उन से अज्ञानी पुरुषों को बचाना चाहिये। जो विद्वान् कहला कर आप बाहिर के पाखण्ड और दम्भ में फँसें और दूसरों को उन्हीं में फँसाते हैं, वे विद्वान् ही नहीं महामूर्ख स्वार्थी हैं। ऐसे दम्भी कपटी पुरुषों से परे रहने में ही कल्याण है ॥७०॥

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् । मुखं किमस्यासीत्किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥
॥७१॥३१।१०॥

पदार्थः—( यत् ) जिस ( पुरुषम् ) पूर्ण परमात्मा को विद्वान् पुरुष ( वि अदधुः ) विविध प्रकारों से धारण करते हैं उसकी ( कतिधा ) कितने प्रकार से ( वि अकल्पयन् ) कल्पना करते हैं। ( अस्य मुखम् किम् ) इस ईश्वर की सृष्टि में मुख के समान श्रेष्ठ कौन ( आसीत् ) है ( बाहू किम् ) भुजबल का धारण करने वाला कौन ( ऊरू ) जंघें ( किम् ) कौन ( पादौ ) पांव के समान ( किम् ) कौन ( उच्येते ) कहे जाते हैं।

भावार्थः—इस जगत् में ईश्वर का सामर्थ्य असंख्य है, उस समुदाय में उत्तम अङ्ग मुख अर्थात् मुख्य गुणों से इस संसार में क्या उत्पन्न

हुआ है ? बाहू बल वीर्य शूरता और युद्ध आदि विद्या गुणों से कौन पदार्थ उत्पन्न हुआ है ? व्यापार कृषि आदि मध्यम गुणों से किसकी उत्पत्ति हुई है ? मूर्खता आदि नीच गुणों से किसकी उत्पत्ति हुई ? इन चार प्रश्नों के उत्तर आगे के मन्त्र में दिए हैं ॥७१॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याᳬशूद्रो अजायत ॥७२॥ ३१।११॥

पदार्थः—(अस्य) इस प्रभु की सृष्टि में (ब्राह्मणः) वेद ईश्वर का ज्ञाता वा उपासक (मुखम्) मुख के तुल्य उत्तम ब्राह्मण (आसीत्) है। (बाहू) भुजाओं के तुल्य बल, पराक्रमयुक्त (राजन्यः) क्षत्रिय (कृतः) बनाया (यत्) जो (ऊरू) जांघों के तुल्य

वेगादि काम करने वाला ( तद् ) वह ( अस्य ) इसका ( वैश्यः ) सर्वत्र प्रवेश करने हारा वैश्य है। ( पद्भ्याम् ) सेवा के योग्य और अभिमान रहित होने से (शूद्रः) मूर्खतादि गुण युक्त शूद्र ( अजायत ) उत्पन्न हुआ।

भावार्थः—जो मनुष्य वेदविद्या और शम-दमादि उत्तम गुणों में मुख के तुल्य उत्तम, ब्रह्म के ज्ञाता हों वे ब्राह्मण, जो अधिक पराक्रम वाले भुजा के तुल्य कार्यों को सिद्ध करने हारे हों वे क्षत्रिय, जो व्यवहार विद्या में प्रवीण हों वे वैश्य और जो सेवा में प्रवीण विद्या हीन, पगों के समान मूर्खपन आदि नीच गुण युक्त हैं, वे शूद्र मानने चाहियें। ऐसी वर्णव्यवस्था गुण कर्म अनुसार ही वेद कथित है। जन्म से न कोई ब्राह्मण है न ही कोई क्षत्रियादि। सब वेदानुयायी मनुष्यों को चाहिये कि ऐसी व्यवस्था के अनुसार आप चलें और औरों को चलावें ॥७२॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्य्यो अजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥
॥७३॥३१।१२॥

पदार्थः—( चन्द्रमाः ) चन्द्र ( मनसः जाताः ) मनरूप से कल्पना किया गया । जैसे हमारे शरीर में मन है, ऐसे ही विराट् शरीर में चन्द्र है । ( सूर्यः चक्षोः अजायत ) चक्षु से सूर्य को प्रकट किया, मानो उसका नेत्र सूर्य है ( श्रोत्रात् वायुः च प्राणः च ) श्रोत्र से वायु और प्राण प्रकट किए गए, मानो श्रोत्र, वायु और प्राण हैं । ( मुखात् ) मुख से ( अग्निः अजायत ) अग्नि को प्रकट किया, मानो अग्नि विराट् का मुख है ।

भावार्थः—सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् परमात्माने, प्रकृति रूप उपादान कारण से, इस ब्रह्माण्ड रूप

विराट् शरीर को उत्पन्न किया। उसमें चन्द्रलोक मन स्थानी जानना चाहिये। सूर्यलोक नेत्ररूप, वायु और प्राण श्रोत्र के तुल्य, अग्नि मुखके तुल्य ओषधि और वनस्पतियां रोमों के तुल्य, नदियां नाड़ियों के तुल्य और पर्वतादि हाड़ों के तुल्य हैं, ऐसे जानना चाहिए ॥७३॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षꣳशीर्ष्णो द्यौः समवर्तत। पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२॥ अकल्पयन् ॥७४॥ ३१।१३॥

पदार्थः—( नाभ्याः ) नाभी भाग से ( अन्तरिक्षम् ) लोकों के बीच का आकाश ( आसीत् ) हुआ। ( द्यौः ) प्रकाश युक्त लोक ( शीर्ष्णः ) सिर भाग से ( सम् अवर्तत ) कल्पित हुआ ( पद्भ्याम् भूमिः ) पांव से पृथिवी, ( दिशः श्रोत्रात् ) श्रोत्र से दिशाएँ ( तथा लोकान् ) ऐसे ही सब लोकों को (अक-

ल्पयन् ) कल्पित किया गया है। अर्थात् उस विराट् के अन्तरिक्ष नाभि है, सिर द्यु लोक है, भूमि पैर हैं, कान दिशा तथा लोक हैं।

भावार्थ—इस संसार में जो २ कार्यरूप पदार्थ हैं, वे सब, विराट् का ही अवयव रूप जानना चाहिये। ऐसे विराट् को भी जब परमात्मा ने बनाया, तब यह सिद्ध होगया कि, सारी भूमि और द्युलोकादि सब लोक, उनमें रहने वाले सब प्राणी, उस सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ने ही बनाये हैं। यह सब लोक, न तो आप ही उत्पन्न हुए न इनका कोई और ही रक्षक है, क्योंकि प्रकृति आप जड़ है, जड़ से अपने आप कुछ उत्पन्न हो नहीं सकता। जीव अल्पज्ञ परतन्त्र और बहुत ही थोड़ी शक्ति वाला है। सूर्य चन्द्र आदि लोक लोकान्तरों का जीव द्वारा बनना असंभव है ॥७४॥

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत। वस-

न्तो ऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मःशरद्धविः ॥

॥६५॥३१।१४॥

पदार्थः—( यत् ) जब ( हविषा ) ग्रहण करने योग्य वा जानने योग्य ( पुरुषेण ) पूर्ण परमात्मा के साथ ( देवाः ) विद्वान् लोग ( यज्ञम् ) उपासना रूप ज्ञान यज्ञ को (अतन्वत) संपादन करते हैं, तब ( अस्य ) इस यज्ञ के ( वसन्तः ) वर्ष के आरम्भ काल वसन्त ऋतु के समान, सौम्यभाग दिन का पूर्वाह्न काल ही ( आज्यम् ) घृत ( ग्रीष्मः ) ग्रीष्म ऋतु मध्याह्न काल ( इध्म. ) ईन्धन प्रकाशक और ( शरत् ) शरद् ऋतु ( हविः ) होमने योग्य पदार्थ ( आसीत् ) है।

भावार्थः—जब बाह्य सामग्री के अभाव में संन्यासी विद्वान् महात्मा लोग, संसार कर्ता ईश्वर की, उपासना रूप मानस ज्ञान यज्ञ को

विस्तृत करे, तब पूर्वाह्णादि काल ही साधनरूप से कल्पना करने चाहियें ॥७५॥

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिःसप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥
॥७६॥३१।१५॥

पदार्थः—( यत् ) जिस ( यज्ञम् ) मानस ज्ञान को (तन्वानाः) विस्तृत करते हुए (देवाः) विद्वान् लोग ( पशुम् ) जानने योग्य (पुरुषम्) पूर्ण परमात्मा को हृदय में ( अबध्नन् ) ध्यान योग रस्सी से बांधते हैं ( अस्य ) इस यज्ञ के ( सप्त ) सात ( परिधयः ) परिधि अर्थात धारण सामर्थ्य ( आसन् ) हैं, ( त्रिःसप्त ) इक्कीस २१ ( समिधः ) सामग्री रूप (कृताः) विधान किये गये हैं ।

भावार्थः— विद्वान् लोग इस अनेक प्रकार से कल्पित परिधि आदि सामग्री से युक्त

मानस यज्ञ को करते हुए, उससे पूर्ण परमेश्वर को जान कर कृतार्थ होते हैं। इस यज्ञ की इक्कीस समिधा सामग्री रूप ऐसी हैं—मूल प्रकृति, महत्तत्व अहंकार, पांच सूक्ष्म भूत, पांच स्थूल भूत, पांच ज्ञान इन्द्रिय, और सत्त्व, रजस्, तमस्, यह तीन गुण २१ समिधा हैं। गायत्री आदि सात छन्द परिधि हैं, अर्थात् चारों ओर से सूत के सात लपेटों के समान ॥७५॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याःसन्ति देवाः ॥७७॥३१।१६॥

पदार्थः—जो (देवाः) विद्वान् लोग (यज्ञेन) ज्ञान यज्ञ से (यज्ञम्) पूजनीय परमात्मा की (अयजन्त) भक्ति से पूजा करते हैं (तानि) वह पूजादि (धर्माणि) धारण

रूप धर्म ( प्रथमानि ) अनादि रूप मे मुख्य ( आसन् ) हैं, ( ते ) वे विद्वान् ( महिमानः ) महत्त्व से युक्त हुए ( यत्र ) जिस सुख में ( पूर्वे ) इस समय से पूर्व हुए ( साध्याः ) साधनों को किये हुए ( देवाः ) प्रकाशमान विद्वान् ( सन्ति ) हैं उस ( नाकम् ) सब दुःखों से रहित मुक्ति सुख को ( ह ) ही ( सचन्त ) प्राप्त होते हैं।

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि, विवेक वैराग्य शम दमादि साधनों से युक्त होकर उस दयामय परमात्मा की उपासना करें। इस संसार में अनादि काल से, इस भक्ति उपासनारूप धर्म से पहले मुक्त हुए विद्वान्, सदा आनन्द को प्राप्त हो रहे हैं। ऐसे हम सब लोग, उस जगत्पति जगदीश की, श्रद्धाभक्ति और प्रेम से उपासना करके, सब दुःखों से रहित सदा आनन्द धाम मुक्ति को प्राप्त होवें ॥७७॥

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसांच विश्वकर्मणः

समवर्त्तताग्रे। तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति

तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥७८॥३१।१७॥

पदार्थः—(अद्भ्यः) जलों से और (पृथिव्यै) पृथिवी से (विश्वकर्मणः) समस्त संसार के कर्त्ता जगत्पतिके (रसात्) प्रेरक बलसे (संभृतः) सम्यक् पुष्ट हुआ (अग्रे) सबसे प्रथम जो ब्रह्माण्ड (सम् अवर्त्तत) उत्पन्न हुआ (त्वष्टा) वह विधाता ही (तस्य) उसके (रूपम्) रूप को (विदधत्) विधान करता हुआ (अग्रे) आदि में (मर्त्यस्य) मनुष्य के (आजानम्) अच्छे प्रकार कर्त्तव्य कर्म और (देवत्वम्) विद्वत्ता को (एति) प्राप्त होता और मनुष्यों को प्राप्त कराता है।

भावार्थः—संपूर्ण संसार का जनक जो पर-

मात्मा, प्रकृति और उसके कार्य सूक्ष्म तथा स्थूल भूतों से, सब जगत् को और उसके शरीरों के रूपों को बनाता है। उस ईश्वर का ज्ञान और उसकी वैदिक आज्ञाका पालन ही देवत्व है ॥७८॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥७६॥ ३१।१८॥

पदार्थः—जिज्ञासु पुरुष को विद्वान् कहता है कि, हे जिज्ञासो ! (अहम्) मैं जिस (एतम) पूर्व उक्त (महान्तम्) बड़े २ गुणों से युक्त (आदित्यवर्णम्) सूर्य के तुल्य प्रकाश स्वरूप (तमसः) अज्ञान अन्धकार से (परस्तात्) पृथक् वर्तमान (पुरुषम्) पूर्ण परमात्मा को (वेद) जानता हूँ (तम् एव) उसी को (वि-दित्वा) जान कर आप (मृत्युम्) दुःखप्रद

मरण को ( अति एति ) उल्लँघन कर जाते हो किन्तु ( अन्यः ) इससे भिन्न ( पन्थाः ) मार्ग ( अयनाय ) अभीष्ट स्थान मोक्ष के लिए ( न विद्यते ) विद्यमान नहीं है।

भावार्थः—मुमुक्षु पुरुष को कोई महानुभाव विद्वान् उपदेश करता है कि, मुमुक्षो ! मैं उस परमात्मा को जानता हूँ। जो सर्वज्ञतादि गुणयुक्त सूर्य के समान प्रकाश स्वरूप, अज्ञान अन्धकार से परे वर्तमान, सर्वत्र पूर्ण है। इसीको जान कर वारंवार जन्म मरण से रहित हुआ मुक्तिधाम को प्राप्त हो कर, सदा आनन्द में रहता है। इस प्रभु के ज्ञान और भक्ति के विना मुक्तिधाम के लिये दूसरा कोई मार्ग नहीं है। इसलिये वहिर्मुखता के हेतु घण्टे घड़ियाल बजाना, अवैदिक चिह्न तिलक छाप आदि लगाना, कान फाड़ कर उनमें मुद्रा धारण करना कराना, सब व्यर्थ और वेद विरुद्ध हैं। यह सब, स्वार्थी दम्भी वेद विरोधियों के

चलाये हुए हैं। इन पाखण्डों से मुक्ति की आशा करनी भी महामूर्खता है ॥७९॥

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते। तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरा-स्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥८०॥

३१।१९॥

पदार्थः—जो (अजायमानः) अपने स्वरूप से उत्पन्न न होने वाला (प्रजापतिः) प्रजा पालक जगदीश्वर (गर्भे) गर्भस्थ जीवात्मा और (अन्तः) सब के हृदय में (चरति) विचरता है और (बहुधा) बहुत प्रकारों से (विजायते) विशेष प्रकट होता है (तस्य योनिम्) उस प्रजापति के स्वरूप को (धीराः) ध्यानशील महापुरुष (परिपश्यन्ति) सब ओर से देखते हैं (तस्मिन) उसमें (ह) प्रसिद्ध (विश्वा भुवनानि) सब लोक लोकान्तर

( तस्थुः ) स्थित हैं ।

भावार्थः—सर्वपालक परमेश्वर, आप उत्पन्न न होता हुआ अपने सामर्थ्य से जगत् को उत्पन्न कर और उसमें प्रविष्ट होके सर्वत्र विचरता है अर्थात् सर्वत्र विराजमान है। उस जगदीश के स्वरूपको, विवेकी महात्मा लोग ही जानते हैं। उस सर्वाधार परमात्मा के आश्रित ही सब लोक स्थित हो रहे हैं। ऐसे सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सर्वनियन्ता अन्तर्यामी प्रभु को जानकर ही हम सुखी हो सकते हैं ॥८०॥

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः ।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥
॥८१॥३१।२०॥

पदार्थः—( यः ) जो ( देवेभ्यः ) दिव्य गुण वाले पृथिवी आदि भूतों के उत्पन्न करने

के लिये आप परमेश्वर ( आतपति ) सब प्रकार से विचार करता है और ( यः ) जो ( देवानाम् ) पाञ्च भूत और सब लोकों के भी ( पुरः हितः ) सब से पूर्व विद्यमान रहा और ( यः ) जो ( देवेभ्यः ) प्रकाश और तेजोमय सूर्यादिकों से भी ( पूर्वः ) प्रथम ( रुचाय ) स्वप्रकाशस्वरूप परमात्मा को ( नमः ) हमारा वारंवार प्रेम से नमस्कार है ।

भावार्थः—जो जगत्पिता परमात्मा, भूत भौतिक संसार की उत्पत्तिसे प्रथम, विचार रूपी तप करता है । जैसे घट का निमित्त कारण कुलाल घट की उत्पत्ति से प्रथम जिस प्रकार का घट बनाना हो वैसाही विचार करके घट को बनाता है । ऐसे ही ईश्वर विचार कर ( उसका नियम ही विचार है ) संसार को उत्पन्न करता है । संसार के देव सूर्य चन्द्र बिजुली आदिकों से वह प्रभु, पूर्व ही विद्यमान था । ऐसे वेद निरूपित प्रकाश और

तेजोमय जगदीश को, बड़ी नम्रता पूर्वक हम सब प्रेम भक्ति से वारंवार प्रणाम करते हैं ॥८१॥

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन्।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन्वशे॥
॥८२॥३१।२१॥

पदार्थः—( देवाः ) विद्वान् पुरुष ( रुचम् ) रुचिकारक ( ब्राह्मम् ) ब्रह्म सम्बन्धी ज्ञान को ( जनयन्तः ) उपदेश द्वारा उत्पन्न करते हुए ( अग्रे ) प्रथम ( तत् ) उस ब्रह्म को ही (त्वा) तुम्हें ( अब्रुवन् ) कथन करें, ( यः ब्राह्मणः ) जो वेद वेत्ता ब्रह्मज्ञानी ( एवम् ) ऐसे (विद्यात् ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करता है ( तस्य ) उसके ( वशे ) अधीन समस्त ( देवाः ) इन्द्रिय गण ( असन् ) रहते हैं।

भावार्थः—ब्रह्मज्ञान ही सब को आनन्द देने

वाला और मनुष्य की रुचि प्रीति बढ़ाने वाला है। उस ब्रह्मज्ञान का विद्वान् लोग, अन्य मनुष्यों के आगे उपदेश करके, उनको आनन्दित कर देते हैं जो मनुष्य इस प्रकार से ब्रह्म को जानता है, उसी ज्ञानी पुरुष के मन आदि सब इन्द्रिय वश में हो जाते हैं ॥८१॥

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् । इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण ॥८२॥

३१।२२॥

पदार्थः—हे परमात्मन्! (ते) आपकी (श्रीः) समग्र शोभा (च) और (लक्ष्मीः) सब ऐश्वर्य (च) भी (पत्न्यौ) दोनों स्त्रियों के तुल्य वर्त्तमान (अहोरात्रे) दिन रात (पार्श्वे) पार्श्व (नक्षत्राणि रूपम्) सारे नक्षत्र आप से ही प्रकाशित होने से आपके ही रूप हैं, (अश्विनौ)

आकाश और पृथ्वी (व्यात्तम्) मानो खुले मुख के समान हैं आपही (इष्णन्) इच्छा करते हुए (मे) मेरे लिये (अमुम्) उस मुक्ति सुख को (इषाण) प्राप्त करावें और (मे) मेरे लिये (सर्वं लोकम् इषाण) सब के दर्शन और सब लोकों के सुखों को पहुँचावें।

भावार्थः—हे परमात्मन् संसार भर की सर्व शोभा रूपी श्री और संसार भर की सब विभूति धन ऐश्वर्य रूपी लक्ष्मी, ये दोनों आपकी स्त्रियां हैं। जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पति के आधीन रहती है, ऐसे ही सब शोभा और सब प्रकार की विभूति आपकी आज्ञा में सदा वर्त्तमान हैं। दिन रात पास (पार्श्वे) और सब नक्षत्र आपके रूप के तुल्य हैं। सूर्य चन्द्र खुले मुख के तुल्य हैं, अर्थात् समस्त जगत् आपके ही अधीन है, आपकी आज्ञा से बाहिर कुछ भी नहीं है, ऐसे महासमर्थ जगत्पति आप पिता से ही हमारी प्रार्थना है कि, हमें शोभा और

विभूति प्रदान करें और सब लोकों के सुख प्राप्त करावें । सर्व दुःख निवृत्ति पूर्वक, परमानन्द प्राप्ति रूपी मुक्ति भी हमें कृपा कर प्रदान करें ॥८३॥

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् । तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥८४॥ ४०।१॥

पदार्थः—( जगत्याम् ) इस सृष्टि में (यत् किंच) जो कुछ भी ( जगत् ) चर अचर संसार है ( इदम सर्वम् ) यह सब ( ईशा ) सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से ( वास्यम् ) व्याप्त है । ( तेन त्यक्तेन ) उस त्याग किये हुए अथवा ( तेन ) उस परमेश्वर से ( त्यक्तेन ) दिये हुए पदार्थ से ( भुंजीथाः ) भोग अनुभव कर । ( कस्य स्वित् ) किसी के भी ( धनम् ) धन की ( मा गृधः ) इच्छा मत कर ।

भावार्थः—मनुष्यमात्र को चाहिये कि, सर्वत्र व्यापक परमात्मा को जानकर, अन्याय से किसी के धनादि पदार्थ की कभी इच्छा भी न करे। जो कुछ वस्तु परमेश्वर ने दे दी है उससे ही अपने शरीर की रक्षा करे। जो धर्मात्मा पुरुष, परमेश्वर को सर्वत्र व्यापक सर्वान्तर्यामी जानकर, कभी पाप नहीं करते और सदा प्रभु के ध्यान स्मरण में अपने समय को लगाते हैं, वे महापुरुष, इस लोक में सुखी और परलोक में मुक्ति सुख को प्राप्त करके सदा आनन्द में रहते हैं ॥८४॥

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥८५॥ ४०।२॥

पदार्थः—(इह) इस जगत् में मनुष्य (कर्माणि) वैदिक कर्मों को (कुर्वन् एव)

करता हुआ ही (शतम् समाः) सौ वर्ष पर्य्यन्त (जिजीविषेत्) जीने की इच्छा करे, हे मनुष्य! (एवम्) इस प्रकार (त्वयि नरे) कर्म करने वाले तुझ पुरुष में (कर्म न लिप्यते) अवैदिक कर्म का लेप नहीं होता, (इतः अन्यथा) इस से किसी दूसरे प्रकार से (न अस्ति) कर्म का लेप लगे विना नहीं रहता।

भावार्थः—पुरुषों को चाहिये कि, वैदिक कर्म, सन्ध्या, प्रार्थना, उपासना, वेदों का स्वाध्याय, महात्मा सन्त जनोंका सत्संगादि करता हुआ, सौ वर्ष पर्यन्त जीने की इच्छा करे। ब्रह्मचर्यादि साधन ही पुरुष की आयु को बढ़ाने वाले हैं। व्यभिचारी, दुराचारी ब्रह्मचारी नहीं बन सकता, इसलिये दुराचाररूप पाप कर्म त्याग कर, ब्रह्मचर्यादि साधन पूर्वक वैदिक कर्म करता हुआ पुरुष, चिरंजीव बनने की इच्छा करे पुरुष कुछ न कुछ कर्म करे विना नहीं रह सकता, अच्छे कर्म न करेगा तो बुरे कर्म

ही करेगा। इसलिये वेद ने कहा है, पुरुष सदैव धर्म करे, तब पाप कर्मों से पतन का भय कभी नहीं होगा। पाप कर्मों से छूटने का और कोई उपाय नहीं है ॥८५॥

**असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।**
**ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥८६॥** ४०।३॥

पदार्थः—(ते लोकाः) वे मनुष्य (असुर्या) केवल अपने प्राणों के पुष्ट करने वाले पापी असुर कहाने योग्य हैं जो (अन्धेन) अन्धकार रूप (तमसा) अज्ञान से (आवृताः) सब ओर से ढके हुए हैं (ये के च) जो कोई (नाम) प्रसिद्ध (जनाः) मनुष्य (आत्महनः) आत्म हत्यारे हैं (ते) वे (प्रेत्य) मर कर (अपि) जीते हुए भी (तान्) उन दुष्ट देहरूपी लोकों को ही (गच्छन्ति) प्राप्त होते हैं।

भावार्थः—वेही मनुष्य, असुर दैत्य, राक्षस तथा पिशाच आदि हैं, जो आत्मा में और जानते, वाणी से और बोलते, और करते कुछ और ही हैं। ऐसे लोग कभी अज्ञान से पार हो कर परमानन्द रूप मुक्ति को नहीं प्राप्त हो सकते। ऐसे ही पापी पुरुष अपने आत्मा के हनन करने हारे वेद में आत्म हत्यारे कहे गए हैं। दूसरे ये भी आत्म हत्यारे हैं, जो पिता की न्याईं सब का पालन पोषण करने हारे, समस्त संसार के कर्ता हर्ता सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर को नहीं मानते, न उसकी भक्ति करते, न ही उसकी वैदिक आज्ञा के अनुसार अपना जीवन बनाते हैं, केवल विषय भोगों में फँसकर, सारा जीवन, उन भोगों की प्राप्ति के लिये लगा देना पामरपन नहीं तो और क्या है? ईश्वर को न मानना ही सब पापों से बड़ा पाप है। ऐसे महापापी नास्तिक पुरुषों की सदा दुर्गति होती है ऐसी दुर्गति देनेहारी नास्तिकता

रूपी राक्षसी से सब को बचना चाहिये ॥८६॥

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुव-न्पूर्वमर्षत् । तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्त-स्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥८७॥४०.४॥

पदार्थः—( अनेजत् ) कांपने वाला नहीं, अचल, अपनी अवस्था से कभी चलायमान नहीं होता। (एकम) अद्वितीय (मनसः जवीयः) मनसे भी अधिक वेग वाला ब्रह्म है। ( पूर्वम् ) सबसे प्रथम, सबसे आगे ( अर्षत् ) गति करते हुए अर्थात् जहां कोई चलकर जावे वहां व्यापक होने से पूर्व ही विद्यमान् है, ( एनत् ) इस ब्रह्म को ( देवाः ) बाह्य नेत्र आदि इन्द्रिय ( न आप्नुवन् ) नहीं प्राप्त होते। ( तद् ) वह ब्रह्म ( तिष्ठत् ) अपने स्वरूप में स्थित ( धावतः ) विषयों की ओर गिरते हुए ( अन्यान् ) आत्मा

से भिन्न मन वाणी आदि इन्द्रियों को (अति एति) लांघ जाता है उनकी पहुँच से परे रहता है। (तस्मिन्) उस व्यापक ईश्वरमें (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में गति शील वायु और जीव भी (अपः) कर्म वा क्रिया को (दधाति) धारण करता है।

भावार्थः—परमात्मा व्यापक है, मन जहां २ जाता है वहां २ प्रथम से ही परमात्मदेव स्थिर वर्त्तमान हैं। प्रभु का ज्ञान शुद्ध एकाग्र मन से होता है, नेत्र आदि इन्द्रियों और अज्ञानी विषयी लोगों से वह देखने योग्य नहीं। वह जगत्पिता आप निश्चल हुआ, सब जीवों को और वायु सूर्य चन्द्र आदिकों को नियम से चलाता और धारण करता है। ऐसे मन नेत्रादिकों के अविषय ब्रह्म को कोई महानुभाव-महात्मा, बाह्य भोगों से उप-राम ही जान सकता है। विषयों में लम्पट दुरा-चारी-शराबी कबाबी कभी नहीं जान सकता॥८७॥

तदे॑जति॒ तन्नैज॑ति॒ तद्दू॒रे तद्व॑न्तिके। तद॒न्त॒-
र॑स्य॒ सर्व॑स्य॒ तदु॒ सर्व॑स्यास्य बाह्य॒तः ॥८८॥
४०।५॥

पदार्थः—( तद् एजति ) वह ब्रह्म मूर्खों की दृष्टि मे चलायमान होता है। ( तत् ) वह ब्रह्म ( न एजति ) अपने स्वरूप से कभी चलायमान नहीं होता, अथवा ( तत् एजति ) वह ब्रह्म एजयति-समग्र ब्रह्माण्ड को चला रहा है आप चलायमान नहीं होता। ( तत् दूरे ) वह अज्ञानी मूर्ख दुराचारी पुरुषों से दूर है, ( तत् उ अन्तिके ) वह ही ब्रह्म विद्वान् सदाचारी महापुरुषों के समीप है, ( तत् ) वह ( अस्य सर्वस्य ) इस समस्त ब्रह्माण्ड और सब जीवों के ( अन्तः ) भीतर ( तत् उ ) वह ही ब्रह्म ( अस्य सर्वस्य ) इस जगत् के और सब जीवों के ( बाह्यतः ) बाहिर भी वर्त्तमान है, क्योंकि

वह सर्वत्र व्यापक है।

भावार्थः—वह परमात्मा अज्ञानी मूर्खों की दृष्टि से चलता है, वास्तव में वह सब जगत् को चला रहा है, आप कूटस्थ निर्विकार अटल होने से कभी स्व स्वरूप से चलायमान नहीं होता। जो अज्ञानी पुरुष, परमेश्वर की आज्ञा के विरुद्ध हैं, वे इधर उधर भटकते हुए भी उसको नहीं जानते। जो विवेकी पुरुष ईश्वर की वैदिक आज्ञा के अनुसार अपने जीवन को बनाते, सदा वेदों का और वेदानुकूल उपनिषदादिकों का विचार करते, उत्तम महात्माओं का सत्संग और उनकी प्रेम पूर्वक सेवा करते हैं, वे अपने आत्मा में अति समीप ब्रह्म को प्राप्त होकर, सदा आनन्द में रहते हैं। परमात्मदेव को सब जगत् के अन्दर बाहिर व्यापक सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी जान कर कभी कोई पाप न करते हुए, उस प्रभु के ध्यान से अपने जन्म को सफल करना चाहिये ॥८८॥

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ॥

॥८६॥४०।६॥

पदार्थः—( यस्तु ) जो भी विद्वान् (सर्वाणि भूतानि ) सब चर अचर पदार्थों को (आत्मन् एव ) परमात्मा के ही आश्रित ( अनु पश्यति) वेदों के स्वाध्याय महात्माओं के सत्संग धर्माचरण और योगाभ्यास आदि साधनों से साक्षात् कर लेता है और ( सर्वभूतेषु च ) सब प्रकृति आदि पदार्थों में ( आत्मानम् ) परमात्मा को व्यापक जानता है (ततः) तब वह ( न विचिकित्सति ) संशय को नहीं प्राप्त होता ।

भावार्थः—जो विद्वान् पुरुष सब प्राणी अप्राणी जगत् को परमात्मा के आश्रित देखता है और सब प्रकृति आदि पदार्थों में परमात्मा को

जानता है। ऐसे विद्वान् महापुरुष के हृदय में, कोई संशय नहीं रहता।

इस मन्त्र का दूसरा अर्थ ऐसा है कि, जो विद्वान् पुरुष, सब प्राणियों को अपने आत्मा में और अपने आत्मा को सब प्राणियों में देखता है वह किसी से घृणा वा किसी की निन्दा नहीं करता, अर्थात् वह सब का हितेच्छु शुभचिन्तक बन जाता है ॥८६॥

**यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।**
**तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥**
**॥६०॥४०।७॥**

पदार्थः—( यस्मिन् ) जिस ब्रह्म ज्ञान के प्राप्त होने से ( सर्वाणि भूतानि ) सब जीव प्राणी ( आत्मा एव अभूत् ) अपने आत्मा के तुल्य ही हो जाते हैं समस्त जीव अपने समान दीखने लगते हैं तब ( एकत्वम् अनु पश्यतः )

परमात्मा में एकता अद्वितीय भाव को ध्यान योग से साक्षात् जानने वाले महापुरुष के ( कः मोहः ) मूढ़ता कहां और ( कः शोकः ) कौन सा शोक वा क्लेश रह सकता है अर्थात् उस महापुरुषके शोक मोहादि नष्ट होजाते हैं।

भावार्थः—जो विद्वान् संन्यासी महात्मा लोग, परमात्मा के पुत्र प्राणिमात्र को अपने आत्मा के तुल्य जानते हैं, अर्थात् जैसे अपना हित चाहते हैं, वैसे ही अन्यों में भी वर्त्तते हैं। एक अद्वितीय परमात्मा की शरण को प्राप्त होते हैं, उनको शोक मोह लोभादि कदाचित् प्राप्त नहीं होते। और जो लोग, अपने आत्मा को यथार्थ जानकर परमात्म-परायण हो जाते हैं, वे सदा सुखी रहते हैं, ईश्वर से विमुख को कभी सुख की प्राप्ति नहीं होती ॥६०॥

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्ध-

मपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥६१॥ ४०।८॥

पदार्थः—( सः ) वह परमात्मा ( परि अगात् ) सब ओर से व्याप्त है ( शुक्रम ) शीघ्रकारी सर्वशक्तिमान् ( अकायम् ) शरीर रहित, ( अव्रणम् ) फोड़ा फुन्सी और घाव से रहित ( अस्नाविरम् ) नाड़ी नस के बन्धन से रहित, ( शुद्धम् ) अविद्यादि दोषों से रहित, सदा पवित्र ( अपापविद्धम् ) पापों से सदा मुक्त ( कविः ) सर्वज्ञ ( मनीषी ) सब के मनों का प्रेरक ( परिभूः ) दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला ( स्वयम्भूः ) माता पिता से जन्म न लेने वाला अपनी सत्ता में सदा विद्यमान् अनादि स्वरूप है वह ( याथातथ्यतः ) यथार्थ

रूप से ठीक ठीक ( शाश्वतीभ्यः ) सनातन से चली आई ( समाभ्यः ) प्रजाओं के लिए ( अर्थात् ) समस्त पदार्थों को ( व्यदधात् ) विशेष कर रचता और उन का ज्ञान प्रदान करता है ।

भावार्थः—जो परमात्मा, अनन्तशक्ति युक्त अजन्मा निराकार सदामुक्त न्यायकारी निर्भय सर्वज्ञ सबका साक्षी नियन्ता अनादिस्वरूप, सृष्टि के आदि में ब्रह्मर्षियों द्वारा वेद विद्या का उपदेश न करता तो, कोई विद्वान् न होसकता । ऐसे अजन्मा निराकार जगत्पति का, जन्म मानना और उसका आकार बताना, घोर मूर्खता और वेद विरुद्ध नास्तिकता नहीं तो और क्या है ? परमात्मा कृपा कर के ऐसी नास्तिकता से जगत् को, बचावे ऐसी प्रार्थना है ॥६१॥

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसंम्भूतिमुपासते ।

ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याᳯं

रताः ॥१२॥ ४०।६॥

पदार्थः—( ये ) जो ( असम्भूतिम् ) सत्त्व रजस् तमस् इन तीन गुणों वाली अव्यक्त प्रकृति की ( उपासते ) उपास्य ईश्वर भाव से उपासना करते हैं, वे ( अन्धस् तमः ) आवरण करने वाले अन्धकार को ( प्रविशन्ति ) प्राप्त होते हैं। ( ये उ ) और जो ( सम्भूत्याम् ) सृष्टि में ( रताः ) रमण करते हैं, उसी में फँसे हैं, ( ते ) वे ( उ ) निश्चय से ( ततः ) उससे भी ( भूय इव ) अधिक गहरे ( तमः ) अज्ञानरूप अन्धकार में प्रविष्ट होते हैं।

भावार्थः—जो मनुष्य, समस्त जगत् के प्रकृति रूप जड़ कारण को उपास्य ईश्वर भाव से स्वीकार करते हैं। वे अविद्या में पड़े हुए क्लेशों को ही प्राप्त होते हैं। और जो कार्य जड़ जगत्

को उपास्य इष्ट देव ईश्वर जान कर, तुम जड़ पदार्थ की उपासना करते हैं, वे गाढ़ अविद्या में फँस कर, सदा अधिक तर क्लेशों को प्राप्त होते हैं। इसलिये सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा को ही, अपना पूज्य इष्ट देव जान कर, उसी की ही सदा उपासना करनी चाहिये, जड़ की नहीं।

अथवा—(असम्भूतिम्) इस देह को छोड़ कर पुनः अन्य देह में आत्मा प्रकट नहीं होता, ऐसा मानने वाले गाढ़ अन्धकार में पड़े हैं और जो (सम्भूतिम्) आत्मा ही कर्मानुसार जन्मता और मरता है, ईश्वर कुछ नहीं है, जो ऐसा मानने वाले हैं, वे उन से भी अधिक घोर अन्धकार में पड़े हैं ॥६२॥

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥

॥६३॥४०।१०॥

पदार्थः—( सम्भावन ) उत्पत्ति वाले कार्य जगत् से ( अन्यत् एव ) भिन्न ही फल (आहुः) कहते हैं, ( असम्भवात ) कारण प्रकृति के ज्ञान से ( अन्यत् आहुः ) अन्य ही फल कहते हैं ( ये ) जो विद्वान् पुरुष ( नः ) हमें ( तत् ) इस तत्त्व को ( विचचक्षिरे ) व्याख्यान पूर्वक कहते हैं उन ( धीराणाम् ) बुद्धिमान् पुरुषों से ( इति शुश्रुम ) इस प्रकार के वचन को हम सुनते हैं।

भावार्थः—जैसे विद्वान् लोग, कार्य कारण रूप वस्तु से भिन्न भिन्न उपकार लेते और लिवाते हैं और उन कार्य कारण के गुणों को आप जानते और दूसरे लोगों को भी बताते हैं ऐसे ही हम सब को निश्चय करना चाहिये ॥१३॥

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयꣳ सह। विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृत-

मश्नुते ॥६४॥ ४०।११॥

पदार्थः—( यः ) जो पुरुष ( सम्भूतिम् ) कार्य जगत् ( च ) और ( विनाशम् ) जिस में पदार्थ नष्ट होकर लीन होते हैं, ऐसे कारण रूप असम्भूति ( च ) इन के गुण कर्म स्वभावों को ( सह ) एक साथ ( उभयम् ) दोनों (तत्) उन कार्य कारण स्वरूपों को ( वेद ) जानता है ( विनाशेन ) सब के अदृश्य होने के परम कारण को जान कर ( मृत्युम् ) देह छोड़ने से होने वाले भय को ( तीर्त्वा ) पार करके उस को सर्वथा त्याग कर ( सम्भूत्या ) कारण से कार्यों के उत्पन्न होने के तत्त्व को जान कर (अमृतम्) अविनाशी मोक्ष सुख को (अश्नुते) प्राप्त होता है।

भावार्थः—कार्य कारण रूप वस्तु निरर्थक नहीं है, किन्तु, कार्य कारण के गुण कर्म स्वभावों

को जानकर, धर्म आदि मोक्ष के साधनों में संयुक्त करके, अपने शरीरादि के कार्य कारण को जानकर, मरण का भय छोड़ कर, मोक्ष की सिद्धि करनी चाहिये। जिस कारण से यह शरीर उत्पन्न हुआ है, उसमें ही कभी न कभी अवश्य लीन होगा। जिसकी उत्पत्ति हुई उसका नाश भी अवश्य होगा ऐसे निश्चय से निर्भय होकर, मुक्ति के साधनों में यत्न शील होना चाहिये ॥१४॥

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उं विद्यायांरताः॥
॥१५॥४०।१२॥

पदार्थः—( ये ) जो लोग ( अविद्याम् ) नित्य पवित्र सुख रूप आत्मा से भिन्न अपने और स्त्री आदिकों के शरीर आदिकों को नित्य पवित्र सुख और आत्मा रूप जानते और ( उपासते ) इन शरीरादिकों के अंजन मंजन में

सारे समय को लगा देते हैं वे (अन्धं तमः) गाढ़ अन्धकार में (प्रविशन्ति) प्रवेश करते हैं, महा अज्ञानी मूर्ख हैं और (ये उ) जो भी (विद्यायाम् रताः) विद्या अर्थात् केवल शास्त्रों के अक्षरों के पठन पाठनादि में लगे रहते हैं, वे (ततः भूयः इव) उनसे भी अधिक (तमः) अज्ञानान्धकार में प्रवेश कर रहे हैं, उन से भी अधिक अज्ञानी और मूर्ख हैं।

भावार्थः—जो अज्ञानी संसारी लोग, आत्मा और परमात्मा के ज्ञान से हीन, केवल अनित्य अपवित्र दुःख अनात्म रूप, अपने और स्त्री आदि के शरीरों को नित्य पवित्र सुख और आत्मारूप जान कर इनके ही पालन पोषण अञ्जन मञ्जन में सदा रहते हैं। न वेदों का स्वाध्याय करते, न ही विद्वानों का सत्संग करते हैं। ऐसे विषयों में लम्पट अविद्या रूप अन्धकार में पड़े अपने दुर्लभ मनुष्य जन्म को व्यर्थ खो रहे हैं। जो शास्त्र या

अन्य अनेक प्रकार की विद्या तो पढ़े हैं, परन्तु प्रभु का ज्ञान और उसकी प्रेम भक्ति से शून्य हैं, न वेदों को पढ़ते सुनते अनात्मविद्या के अभ्यासी हैं, वे उन मूर्खों से भी गए गुज़रे हैं। मूर्ख तो रस्ते पढ़ सकते हैं, परन्तु वे अभिमानी लोग नहीं पढ़ सकते ॥६५॥

अन्यदेवाहुर्विद्यायाऽअन्यदाहुरविद्यायाः।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥
॥६६॥४०।१६॥

पदार्थः—( विद्यायाः ) विद्या के फल और कार्य ( अन्यत् एव आहुः ) भिन्न ही कहते हैं और ( अविद्यायाः अन्यत् आहुः ) अविद्या का फल अन्य कहते हैं (ये नः तद् विचचक्षिरे) जो हम को विद्या और अविद्या के स्वरूप का व्याख्यान करके कहते हैं। इस प्रकार उन

( धीराणाम् ) आत्मज्ञानी विद्वानों से ( तत् ) उस वचन को, हम लोग ( इति शुश्रुम ) इस तत्त्व का श्रवण करते हैं।

भावार्थः—अनादि गुणयुक्त चेतन से जो उपयोग होने योग्य है, वह अज्ञान युक्त जड़ से कदापि नहीं और जो जड़ से प्रयोजन सिद्ध होता है वह चेतन से नहीं। सब मनुष्यों को विद्वानों के संग, योग, विज्ञान और धर्माचरण से इन दोनों का विवेक करके दोनों से उपयोग लेना चाहिये ॥६६॥

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳसह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥६७॥

४०।१४॥

पदार्थः—( विद्याम् च अविद्याम् च ) विद्या और अविद्या को इन साधनों सहित ( यः ) जो विद्वान् ( तत् उभयम् वेद ) इन

दोनों के स्वरूप को जान लेना है वह (अविद्यया) अविद्या से (मृत्युम् तीर्त्वा) मृत्यु को उलांघ कर (विद्यया) ज्ञान से (अमृतम्) मुक्ति को (अश्नुते) प्राप्त होता है।

भावार्थः—जो विद्वान् पुरुष, विद्या अविद्या के यथार्थरूप को जान लेते हैं, वे महापुरुष, जड़ शरीरादिकों को और चेतन आत्मा को परमार्थ के कामों में लगाते हुए, मृत्यु आदि सब दुःखों से छूट कर सदा सुख को प्राप्त होते हैं। यदि जड़ प्रकृति आदि कारण और शरीरादि कार्य न हो तो परमेश्वर जगत् की उत्पत्ति और जीव कर्म उपासना और ज्ञान के संपादन करने में कैसे समर्थ हों; इससे यह सिद्ध हुआ कि, न केवल जड़, न केवल चेतन से और न केवल कर्म से और न केवल ज्ञान से, कोई धर्मादि पदार्थों की सिद्धि करने में समर्थ होता है ॥१७॥

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳशरीरम् ।

ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतꣳस्मर ॥

॥९८॥४०।१५॥

पदार्थः—हे (क्रतो) कर्म कर्ता जीव शरीर छूटते समय तू (ओ३म्) इस मुख्य नाम वाले परमेश्वर का (स्मर) स्मरण कर। (क्लिबे) सामर्थ्य के लिये परमात्मा का (स्मर) स्मरण कर। (कृतम्) अपने किये का (स्मर) स्मरण कर। (वायुः) यह प्राण अपानादि वायु (अनिलम्) कारण रूप वायु जो (अमृतम्) अविनाशी सूत्रात्मारूप है उसको प्राप्त होजायगा। (अथ) इस के अनन्तर (इदम् शरीरम्) यह स्थूल शरीर (भस्मान्तम्) अन्त में भस्मी भूत हो जायगा।

भावार्थः—शरीर को त्यागते समय पुरुषों

को चाहिये कि, परमात्मा के अनेक नामों में सब से श्रेष्ठ जो परमात्मा को प्यारा ओ३म् नाम है, उनका वाणी से जाप और मन से उसके अर्थ सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर का चिन्तन करें। स्मरण करो, यदि आप अपने जीवन में उस सबसे श्रेष्ठ परमात्मा के ओ३म् नाम का जाप और मन से उस परम प्यारे प्रभु का ध्यान करते रहोगे तो, आपको मरण समय में भी उसका जाप और ध्यान बन रुकेगा। इस लिये हम सब को चाहिये कि ओ३म् का जाप और उसके अर्थ परमात्मा का सदा चिन्तन किया करें, तब ही हमारा कल्याण हो सकता है, अन्यथा नहीं ॥६८॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥६९॥४०।१६॥

पदार्थः—हे ( अग्ने ) प्रकाश स्वरूप सर्वव्यापक करुणामय परमात्मन ! हे ( देव ) दिव्य गुण युक्त प्रभो ! आप ( विश्वानि वयुनानि ) हमारे सब कर्म और सब भावों को ( विद्वान् ) जानने वाले हो इसलिए (अस्मान्) हम सब को ( राये ) सकल ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए ( सुपथा ) उत्तम मार्ग से ( नय ) ले चलो। ( अस्मत् ) हम सब से ( जुहुराणम् ) कुटिलता रूप (एनः) पापाचरण को (युयोधि) दूर करो ( ते ) आप के लिए हम सब (भूयिष्ठाम् ) बहुत ही ( नम. उक्तिम् विधेम ) नमस्कार करते हैं।

भावार्थः—हे सर्वान्तर्यामी जगदीश ! आप हमारे सबके ज्ञान और कर्मों को जानते हो, आप से कुछ भी छिपा नहीं। हमारे कुसंस्कार और कुटिलता रूपी पाप को दूर करो। इस लोक और परलोक में सुख प्राप्ति के लिये हमें उत्तम मार्ग

से ले चलो, हम आपको बहुत ही नम्रता पूर्वक वारम्बार प्रणाम और आपकी ही स्तुति करते हैं ॥१६॥

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म ॥१००॥ ४०॥१७॥

पदार्थः—( सत्यस्य ) सत्यस्वरूप परमात्मा का ज्ञान रूप मोक्ष का ( मुखम् ) द्वार ( हिरण्मयेन ) सुवर्णादि ( पात्रेण ) दरिद्रता रूपी दुःख से रक्षक धन सम्पत्ति से ( अपिहितम् ) ढका हुआ है ( यः असौ ) जो यह (आदित्ये) प्रलय में सब को संहार करने वाला जो ईश्वर, उसमें जो ( पुरुषः ) जीव है (सः असौ अहम्) सो यह मैं हूँ। (ओ३म् खम् ब्रह्म) सब से उत्तम नाम परमेश्वर का ओ३म् है, वह खम् आकाश के सदृश व्यापक और ब्रह्म सब से बड़ा है।

भावार्थ:—जो पुरुष, धन को प्राप्त होकर धन को शुभ कामों में लगाते हैं, पापकर्मों में कभी नहीं लगाते वे पुरुष धन्यवाद के योग्य हैं। प्राय: सुवर्णादि धन से प्रमादी लोग, पाप करके मोक्ष मार्ग को प्राप्त नहीं हो सकते। इस लिये मन्त्र में कहा है कि सुवर्णादि धन से मुक्ति का द्वार ढका हुआ है, इसी लिये उपनिषद् में कहा है "तत्त्वं पूषन् अपावृणु" हे सबके पालन पोषण कर्ता प्रभो! उस विघ्न को दूर कर ताकि मैं मुक्ति का पात्र बन सकूं। ओ३म् यह परमात्मा का सब से उत्तम नाम है। इस नाम की उत्तमता वेद उपनिषद् दर्शन और गीता आदि स्मृतियों में वर्णन की है। इसमें वेदों को मानने वालों को कभी सन्देह नहीं होसकता उसको (खम्) आकाश की न्याईं व्यापक और सब से बड़ा होने से ब्रह्म वेद ने कहा है ॥१००॥

ओ३म् शांतिश्शांतिश्शांतिः ॥